देवशास्त्र

चौथा खंड

मूल्य १/५'-

देवशास्त्र

चौथा खं[illegible]

देव धर्म प्रवर्तक विरचित

प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति, और प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक सम्प्रदाय के अधिकारी जनों के लिए एक मात्र सत्य और नित्य नेचर के सत्य और अटल नियमों और उसकी सत्य घटनाओं पर स्थापित विज्ञान मूलक सत्य धर्म की शिक्षा का अपूर्व ग्रंथ।

पहला संस्करण ... . १९६७ वि०
दूसरा संस्करण ... . १९७२ वि०
तीसरा संस्करण .. .. १९९९ वि०
तीसरे संस्करण का पहला पुनर्प्रकाशन* ... २०१२ वि०

देवसमाज पुस्तकालय,
मोगा (पूर्वी पंजाब)

*देव शास्त्र के दूसरे संस्करण (१९७२ वि०) तथा परम पूजनीय भगवान देवात्मा द्वारा उस में किए गए परिवर्तन (जो 'सेवक पत्र" में छपते रहे हैं) के साथ मकाबला कर लिया गया है।

विषय सूची

परिशिष्ट

तीसरे संस्करण की भूमिका

देव शास्त्र का दूसरा सस्करण परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने सं० १९७२ विक्रमी अर्थात् १९१५ ई० में प्रकाशित किया था। उस के अनन्तर उन्होंने उसके पहले भाग अर्थात् "मूल सत्य" को पूर्णतः नये रूप में लिख कर दो भिन्न २ खण्डों अर्थात् "देवशास्त्र" पहला खण्ड और दूसरा खण्ड के रूप में स० १९८४ विक्रमी अर्थात् १९२७ ई० में प्रकाशित किया और फिर इसी क्रम में उसके दूसरे भाग—मनुष्य तत्व—को भी बहुत विस्तार के साथ बिल्कुल नये रूप में लिख कर सं० १९८५ वि० अर्थात सन् १९२८ ई० में प्रकाशित किया। यह तीनों खण्ड देव शास्त्र के तीसरे संस्कारण के रूप में प्रकाशित हुये थे। परम पूजनीय भगवान् देवात्मा इसी प्रकार न केवल देवशास्त्र के तीसरे और चौथे भागों अर्थात "मृत्यु और परलोक तत्व" और "यज्ञ साधन" को ही नये रूप में लिख कर प्रकाशित करना चाहते थे, किन्तु इनके भिन्न देवशास्त्र के और कई खण्ड भी नये रच कर प्रकाशित करने की इच्छा रखते थे, और इस अभिप्राय के लिये उन्होंने बहुत सा ममाला भी एकत्र कर लिया था, परन्तु शोक कि उन्हें ऐसा करने का अवसर न मिल सका। परम पूजनीय भगवान् स्वयं इस दुनिया में वर्तमान होते हये इन भागों को जो नया रूप दे देते उस का तो अब कोई अवसर नहीं रहा। इस लिये अब देवशास्त्र का यह चौथा खण्ड भगवान् देवात्मा चैरेटीज ट्रस्ट की अज्ञानुसार देवशास्त्र के दूसरे संस्करण के चौथे भाग अर्थात् "यज्ञ साधन" के आधार पर ही छापा गया है। दसरे संस्करण में छपे हुए "यज्ञ साधन" विषयक भाग में कुछ परिवर्तन पूजनीय भगवान् देवात्मा ने अपनी इस पृथ्वी पर वर्तमानता में ही कर दिया था, कि जिस के अनुसार वर्षो तक देव समाज में उन की वर्तमानता में भी साधन होते रहे हैं, और अब भी होते हैं। यह परिवर्तन निम्नलिखित है, पाठक गण इसे विशेष रूप से ध्यान में रखे:—

१—"देवशास्त्र यज्ञ" को छोड़ कर उसके स्थान में "स्ववंश यज्ञ" के साधन प्रचलित कर दिये गये थे। और उसके सम्बन्ध में आदेश आदि देवसमाज के मासिक पत्र 'सेवक' खण्ड १४ संख्या ५ में प्रकाशित हुये थे, वही इस खण्ड में दिये गये हैं।

२—पशु जगत् के सम्बन्ध में वर्जित् कर्म सम्बन्धी २४ वां आदेश बदल कर नया आदेश "सेवक" पत्र खण्ड १७ संख्या ६ में छपवा दिया था, वही इस खण्ड में दिया गया है।

३— दूसरे संस्करण में प्रत्येक सम्बन्ध में नियत वार्षिक साधनों के लिये "यज्ञ" और उसके अन्तिम दिन के साधन के लिये "व्रत" के शब्द व्यवहृत हैं, परन्तु बाद में पूजनीय भगवान् ने उन्हें छोड़ कर "यज्ञ" के स्थान में "पाठ और विचार के साधन" और "व्रत" के स्थान में "शेष दिन का साधन" के शब्द प्रचलित कर-दिये थे। इसके भिन्न "देव समाज व्रत" "सेवक व्रत" "स्वास्तित्व व्रत" और "महाव्रत" के शब्दों के स्थान में "देव समाज उत्सव" "सेवक उत्सव" "सत्य धर्म बोधोत्सव" और "देवोत्सव वा महोत्सव" के शब्द प्रचलित कर दिये थे।

४—दसरे संस्करण में प्रत्येक साधन की समाप्ति पर "महावाक्य" का उच्चारण करना लिखा है, परन्तु पीछे से परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने इस "महावाक्य" को पूर्णत. छोड़ दिया था और उस के स्थान मे "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की प्रथा जारी कर दी थी।

सूचना.—उक्त दोनों (नं० ३ और ४ के) परिवर्तन इस खण्ड मे नहीं किये गये। क्योंकि इस से बहुत तबदीलियां करनी पड़ती थीं, इसलिये पहले की न्याईं ही शब्द रहने दिये हैं, परन्तु पाठक गण इस परिवर्तन को ध्यान में रखे।

५—"महा यज्ञ" सम्बन्धी साधनों के अन्त मे जो "देव स्तोत्र" "देव आरती" और "भगवान् देवात्मा का परम लक्ष्य सम्बन्धी संगीत"

दूसरे संस्करण में छपे हुए थे, वह भी पीछे से स्वयं भगवान् देवात्मा ही नये रूप में रच कर प्रकाशित कर गये थे। इसलिये इस खंड में यह तीनों ही नए दिए गए हैं।

६—देव शास्त्र के दूसरे संस्करण में "मृत्यु और परलोक तत्व" उसके तीसरे भाग के तौर पर छपा था। इसके अनन्तर भगवान् देवात्मा ने इस विषय में अपनी शिक्षा को अपनी रचित अति हितकर पुस्तक "मनुष्य आत्मा के सम्बन्ध में चार महातत्व" के दूसरे अध्याय में लिपिबद्ध कर दिया था कि जो सन् १९२१ ई० में प्रकाशित हुई थी (इस लिए इस विषय में उसे अध्ययन करने की आवश्यकता है) परन्तु इस संस्करण के अन्त में भी दूसरे संस्करण मे प्रकाशित "मृत्यु और परलोक तत्व" पाठकों की अवगति के लिये "परिशिष्ट" न० ४ के तौर पर छाप दिया गया है। "महावाक्य तत्व" जो भगवान् देवात्मा ने छोड़ दिया था, वह निकाल दिया गया है।

७—परम पूजनीय भगवान् देवात्मा की जो अन्तिम शिक्षा देव शास्त्र के पहले, दूसरे और तीसरे खण्डों (कि जो उन के सब से अन्तिम ग्रन्थ है) में वर्तमान है, उस के साथ यदि इस खण्ड में दी हुई किसी शिक्षा में कोई भेद हो, तो पाठक गण भगवान् के उन अन्तिम ग्रन्थों में दी हुई शिक्षा को ही प्रमाण समझें।

पोष स० १९९९ वि० *

दे व शा स्त्र

चतुर्थ भाग

यज्ञ साधन

देव शास्त्र का चौथा भाग

सोलह यज्ञ साधनों के सम्बन्ध में

इसमे विश्व गत नाना सम्बन्धियों के सम्बन्ध में विनाशकारी नीच गतियों अथवा अधर्म्म से मोक्ष और विकासकारी उच्च गतियों अर्थात् धर्म्म रूप मे विकसित होने के लिए जिन २ यज्ञों के साधनों की आवश्यकता है, उनके विषय में आदेशों और विधि आदि का वर्णन है।

इन यज्ञों के सम्बन्ध मे विशेष साधन के निमित्त प्रति वर्ष के लिए जो २ काल नियत किया गया है, वह यद्यपि कई कारणों से चन्द्र मासों की तिथियों और हिन्दू भाव के अनुसार रक्खा गया है, तथापि यह काल विभाग ऐसा है, कि जिसे प्रत्येक देश और जाति के लोग भली भान्त ग्रहण कर सकते हैं। इस के भिन्न इन यज्ञों के साधन में काल विषयक मेल रखने के लिए यह आवश्यक भी है, कि उनके सब साधक चाहे वह किसी देश या जाति के हों, एक ही समय विभाग के अनुसार उनका साधन करें। यह समय विभाग इस प्रकार है —

१. मनुष्य जगत् सम्बन्धी मात-पिता सन्तान यज्ञ

पौष मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया से लेकर माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तक।

२. मनुष्य जगत् सम्बन्धी भाई भगिनि यज्ञ

माघ मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी से लेकर माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तक ।

३. मनुष्य जगत् सम्बन्धी देव समाज यज्ञ

माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी से लेकर फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की दशमी तक ।

४. मनुष्य जगत् सम्बन्धी पति पत्नी यज्ञ

फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी से लेकर फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तक ।

५. उद्भिद् जगत् सम्बन्धी उद्भिद् यज्ञ

चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से लेकर चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तक ।

६. मनुष्य जगत् सम्बन्धी भृत्य स्वामी यज्ञ

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया से लेकर वैशाख मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तक ।

७. मनुष्य जगत् सम्बन्धी स्ववंश यज्ञ

वैशाख मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया से लेकर वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तक ।

८. मनुष्य जगत् सम्बन्धी स्वदेश यज्ञ

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा से लेकर ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तक ।

९. मनुष्य जगत् सम्बन्धी सेवक यज्ञ

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी से लेकर आषाढ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तक ।

१०. मनुष्य जगत् सम्बन्धी स्वास्तित्व यज्ञ

श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से लेकर श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तक।

११. पशु जगत् सम्बन्धी पशु यज्ञ

भाद्र मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से लेकर भाद्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक।

१२. मनुष्य जगत् सम्बन्धी परलोक यज्ञ

भाद्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी से लेकर आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या तक।

१३. मनुष्य जगत् सम्बन्धी स्वजाति यज्ञ

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तक।

१४. भौतिक जगत् सम्बन्धी भौतिक यज्ञ

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या तक।

१५. मनुष्य जगत् सम्बन्धी मनुष्य मात्र यज्ञ

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तक।

१६. मनुष्य जगत् सम्बन्धी श्री देवगुरु यज्ञ

अग्रहायण मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से लेकर पौष मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तक।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

मात-पिता सन्तान यज्ञ

द्वारा उसके साथ सम्बन्ध उत्पन्न व उन्नत करने की आवश्यकता को भली भांत अनुभव करे।

३. स्नेह प्रदर्शन

५—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह मोह रहित रहकर अपनी प्रत्येक सन्तान के प्रति उचित रूप से अपना स्नेह प्रदर्शन करे।

४. पालन विधि

६—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी कन्याओं को अपने पुत्रों की न्याईं समरूप से अर्थात् बिना किसी अनुचित पक्षपात के पालन करे।

७—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी प्रत्येक सन्तान की शारीरिक गठन को अपनी सामर्थ्य के अनुसार उत्तम रूप से विकसित करने के लिए सब प्रकार से प्रयत्न करे।

८—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी प्रत्येक सन्तान को शारीरिक रोगों से सुरक्षित रखने और किसी के रोगी होने पर उसके रोग के दूर करने के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार उत्तम रूप से चेष्टा करे।

९—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार अपनी सन्तान का युवा अवस्था तक भली भान्त पालन करे, और यथा सम्भव अपनी किसी विकलाङ्ग और असहाय सन्तान के निमित्त सारी आयु के लिए रक्षा और पालन का प्रबन्ध करे।

५. साधारण शिक्षा

१०—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी प्रत्येक सन्तान की

आवश्यकता और अवस्था के अनुकूल उसकी मानसिक शक्तियों की उन्नति के लिए उसे विविध प्रकार की भाषाओं और साधारण ज्ञान और विज्ञान आदि की शिक्षा दें।

११—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी सन्तान में से प्रत्येक की आवश्यकता के अनुसार उसे विविध प्रकार के खेलों, सवारी, व्यायाम, पाकक्रिया, वाद्य, गान, नृत्य, चित्राङ्कन, शिल्प, कृषि, चिकित्सा, आदि नाना व्यवसायों और वाणिज्य आदि की शिक्षा दे।

६. धर्म्म ज्ञान विषयक शिक्षा

१२—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी प्रत्येक सन्तान को आत्मा की गठन और उसकी विनाश और विकासकारी गतियों के सम्बन्ध में सब प्रकार की आवश्यक शिक्षा दे।

१३—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी प्रत्येक सन्तान को सत्य धर्म्म और उसके लक्षणों और साधनो आदि के विषय में उचित रूप से शिक्षा दें।

७. उच्च जीवन विषयक विकास

१४—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी प्रत्येक सन्तान में नाना सात्विक वा उच्च भावों के विकसित करने के लिये उचित रूप से चेष्टा करे।

१५—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी प्रत्येक सन्तान मे उसकी नीच गतियों के प्रति घृणा वा विराग भाव के उत्पन्न और वर्धन करने के लिये उचित रूप से चेष्टा करे।

८. गृह अनुष्ठान

१६—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी प्रत्येक सन्तान के सम्बन्ध में सब आवश्यक गृह अनुष्ठान देव अनुष्ठान विधि के अनुसार सम्पन्न करे।

९. धन सम्पत्ति विषयक दान

१७—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने उपार्जित धन वा अपनी उपार्जित सम्पत्ति में से अपनी किसी सन्तान को जो कुछ देना चाहें, उसे केवल उतनी मात्रा में दान करे, कि जितनी मात्रा में दान करना उसकी किसी विशेष आवश्यकता के विचार से उसके लिए उचित और हितकर हो।

१०. शासन विधि

१८—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो अपने स्नेह और नैतिक बल के द्वारा अपनी सन्तान का शासन करें। और जब वह अपनी किसी सन्तान को उसके किसी अपराध व उसकी अवज्ञा के लिए कोई दण्ड देना उचित समझें, तब उसके हित और अपने अधिकार की सीमा और उसकी आयु और अवस्था आदि का विचार करके दें।

११. परिशोध

१९—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सन्तान के सम्बन्ध में अपनी किसी अनुचित क्रिया के विषय में बोध लाभ करने पर उसके लिए उचित परिशोध करके उसके साथ अपने सम्बन्ध को पवित्र करे।

१२. मंगल कामना

२०—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर अपनी प्रत्येक सन्तान के लिए मंगल कामना का उचित रूप से साधन करें।

वर्जित कर्म्म

१. अनुचित उत्पत्ति

१—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सब प्रकार की अवस्था का विचार करके जहां तक सम्भव हो, उचित संख्या से अधिक सन्तान उत्पन्न न करें।

२. असम भाव

२—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह पुत्र वा कन्या के भेद से अपनी किसी सन्तान की रक्षा अथवा उसके पालन में असम भाव प्रदर्शन न करें।

३—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह गर्भ-भेद के विचार से अपनी किसी सन्तान को घृणा न करें, और उसकी रक्षा और उसके पालन के विषय में कोई असम भाव न रक्खें।

३. उदासीनता वा विमुखता

४—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सन्तान को उचितरूप से शासन करने से उदासीन न रहें।

५—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार अपनी सन्तान की मानसिक उन्नति की ओर से उदासीन वा विमुख न रहें।

६—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सन्तान को धर्म्म विषयक सत्य ज्ञान की आवश्यक शिक्षा देने या दिलवाने से उदासीन वा विमुख न रहें।

७—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार अपनी सन्तान के हार्दिक विकास की ओर से उदासीन वा विमुख न रहें।

८—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सन्तान के किसी अनुचित कर्म को जान बूझकर उदासीनता की दृष्टि से न देखे।

९—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा साध्य अपनी सन्तान की उचित और समय के अनुकूल किसी प्रार्थना को अस्वीकृत न करे।

४. स्वास्थ्य हानि

१०—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सन्तान के पालन मे अपनी सामर्थ्य के अनुसार जान बूझकर कोई ऐसा आचरण न करे, कि जो उसके शारीरिक स्वास्थ्य वा बल के लिए हानिकारक हो।

५. अनुचित साथ

११—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह वात्सल्य भाव से परिचालित होकर अपनी सन्तान की किसी ऐसी वासना वा रुचि आदि का साथ न दे, कि जिस से उसकी किसी आवश्यक शिक्षा वा सुशीलता वा उसके कर्त्तव्य साधन वा सच्चरित्र को हानि पहुँच सकती हो, अथवा उनके आत्मा में महा हानिकारक मोह की उत्पत्ति वा उन्नति होती हो।

६. कुसंग

१२—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो अपनी सन्तान को ऐसे जनों की संगत में न रहने दें, कि जिनके साथ रहने से उसके शारीरिक स्वास्थ्य वा विद्या लाभ वा सच्चरित्र वा उच्च जीवन को हानि पहुँच सकती हो।

७. अनुचित शिक्षा

१३—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सन्तान को साक्षात् वा असाक्षात् रूप से कोई ऐसी शिक्षा न दें, कि जिसको वह आप असत्य, पाप वा अपराध मूलक जानते हों।

८. अनुचित दण्ड

१४—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अपनी सन्तान के शासन में शारीरिक दण्ड से काम न ले।

१५—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सन्तान से निर्बोधता की दशा में किसी अवज्ञा वा अपराध के हो जाने पर उसे समझा वा डांट देने के भिन्न, किसी अन्य प्रकार की शारीरिक पीडा-जनक कोई शास्ति न दें।

१६—सन्तान यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी सन्तान से सम्यक् बोध और ज्ञान की अवस्था में भी किसी अवज्ञा वा अपराध के हो जाने पर, जब उसे कोई दण्ड देना उचित बोध करें, तब भी बहुत अधिक न दें।

मात-पिता सन्तान यज्ञ

माता पिता और सन्तान के सम्बन्ध में आदेश

सन्तान के लिए

१. सम्बन्ध बोध

१—माता-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता को अपना जन्म दाता, पालन कर्ता, रक्षा कर्ता और शिक्षा दाता उपलब्ध करके, उनके साथ अपना अति पवित्र और घनिष्ट सम्बन्ध अनुभव करे।

२—माता-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता के सम्बन्ध में अपने आपको सब प्रकार की नीच गतियों से मुक्त करने और मुक्त रखने, और उच्च गति दायक प्रत्येक भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. सन्मान प्रदर्शन

३—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता के प्रति उचित रूप से सन्मान भाव अनुभव और प्रदर्शन करे।

४—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता के अतिरिक्त अपने वंशगत प्रत्येक सम्बन्धी के प्रति भी उचित रूप से सन्मान प्रदर्शन करे।

३. कृतज्ञ भाव

५—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता के सम्बन्ध में अपने आप को कृतज्ञ प्रमाणित करे।

४. शुश्रूषा और सेवा

६—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अपने माता पिता के रोग और दुःख और उनकी विपद्ग्रस्त और असहाय अवस्था में उनकी आवश्यक शुश्रूषा सेवा और सहाय करे।

७—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता की शारीरिक पारिवारिक और अन्यान्य आवश्यकताओं को जहां तक अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूरी कर सकता हो, वहां तक अपने तन मन और धनादि के द्वारा पूरी करे।

८—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अपने माता पिता के भिन्न उनके किसी आश्रित मनुष्य वा पशु वा पौदे की भी उचित और विधेय रूप से सेवा करे।

९—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर अपने माता पिता के लिए उनके ज्ञान और भाव विषयक विकास मे जहां तक सम्भव हो, सेवाकारी बने।

५. आवश्यक रक्षा और उन्नति

१०—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि उसने अपने माता पिता वा किसी वंशीय पूर्वज से जिन २ सद्गुणों को लाभ किया हो, उनकी रक्षा वा उन्नति करे।

११—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता वा वंश की प्रत्येक उत्तम प्रथा वा मर्य्यादा की भली भांत रक्षा करे।

१२—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता की दी हुई अथवा उनके वंश से पाई हुई प्रत्येक सम्पत्ति की, जहां तक सम्भव हो, उचित रूप से रक्षा वा उन्नति और उसका उचित रूप से व्यवहार करे।

१३—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह यथा आवश्यक अपने माता पिता के जीते जी, अथवा उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके स्थापन किए हुए किसी साधारण हितकर काम की, जहां तक सम्भव हो, रक्षा और उन्नति करे।

६. हानि परिशोध

१४—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी ऐसी प्रत्येक अनुचित क्रिया के सम्बन्ध में बोध लाभ करने पर कि जिस से उसके माता पिता को किसी प्रकार का अनुचित क्लेश वा दु:ख पहुंचा हो, वा उन्हें कोई अनुचित हानि प्राप्त हुई हो, उचित और यथेष्ट परिशोध करके उनके साथ अपने सम्बन्ध को पवित्र करे।

७. मंगल कामना

१५—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता के लिए उचित रूप से मंगल कामना का साधन करे।

८. अन्त्येष्टि क्रिया

१६—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता के देह त्याग करने पर, यथा सम्भव उनकी अन्त्येष्टि क्रिया मे योग दे, और उसे देव अनुष्ठान विधि के अनुसार उचित रूप से परा करे।

वर्जित कर्म

१. शिथिलता

१—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह जान बूझकर अपनी किसी अनुचित क्रिया से अपने माता पिता के साथ अपने सम्बन्ध को शिथिल न करे।

२. क्लेश वा दुःख

२—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह जान बूझकर अपनी किसी अनुचित क्रिया से अपने माता पिता को किसी प्रकार का कोई क्लेश वा दुःख न पहुंचावे।

३. विमुखता

३—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार अपने माता पिता के किसी अभाव को उचित विधि के द्वारा दूर करने, वा उन्हें किसी उचित विधि के द्वारा प्रसन्न रखने वा प्रसन्न करने से कभी विमुख न हो।

४—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अपने माता पिता के किसी रोग वा उनकी किसी पीड़ा की अवस्था में आवश्यक शुश्रूषा करने से विमुख न हो।

५—मात-पिता यज्ञ साधन करता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, ऐसे जनों और पशुओं आदि की आवश्यक शुश्रूषा और सेवा करने से विमुख न हो, कि जिनकी उसके माता पिता अपने जीवन मे शुश्रूषा वा सेवा करते रहे हों।

४. हानि

६—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता और अपने वंश की किसी **उत्तम मर्य्यादा** को अपनी किसी अनुचित क्रिया से हानि न पहुंचावे।

७—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता अथवा कुल से प्राप्त की हुई **सम्पत्ति** को अपनी किसी **अनुचित** क्रिया से हानि न पहुंचावे।

८—मात-पिता यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सन्तान के लिए आवश्यक है, कि वह अपने माता पिता वा उनके बड़ों के स्थापन किए हुए किसी **उचित और साधारण हितकर काम** को अपनी किसी अनुचित क्रिया से हानि न पहुंचावे।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में माता पिता और सन्तान को एक दूसरे के सम्बन्ध में जिन साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

(१)

माता पिता के लिए साधन

१—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता माता पिता को सन्तान सम्बन्धी आदेशों का विचार पूर्वक पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों मे उपरोक्त आदेशों के पाठ से पहले, यज्ञ साधन कर्ता माता पिता को अपनी संतान के सम्बन्ध मे उन आदेशों के द्वारा अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान से उच्च ज्योति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता माता पिता को यह विचार करना चाहिए, कि उन्होंने श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर पूर्वोक्त आदेशों में से किन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की है, और फिर उनके द्वारा उनका और उनकी सन्तान का जो २ हित हुआ हो, उसे सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में सन्तान विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता माता पिता के हृदय में अपनी सन्तान के सम्बन्ध में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें उनको अपनी साधन पुस्तक मे लिखना चाहिए, और उनमे से जो २ शुभ संकल्प इन्हीं दिनों में आरम्भ व पूरे किए जा सकते हों, उन्हे इन्हीं दिनों में आरम्भ वा पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

५—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता माता पिता को अपनी प्रत्येक सन्तान के सद्गुणों और सात्विक भावों पर (यदि उसमें ऐसे गुण वा भाव वर्तमान हों) चिन्तन करना चाहिए।

६—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता माता पिता को अपनी सन्तान के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर उसके दूर होने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, आवश्यक होने पर, श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

७—इन दिनो मे यज्ञ साधन कर्ता माता पिता को अपनी सन्तान के प्रति अपने सद्भाव के बढाने के निमित्त एक वा दूसरा प्रयत्न करना चाहिए।

८—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता माता पिता को अपनी इस लोक और परलोक वासी प्रत्येक सन्तान के लिए मंगल कामना करनी चाहिए।

(१)

सन्तान के लिए साधन

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता सन्तान को माता पिता सम्बन्धी आदेशों का विचार पूर्वक पाठ वा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता सन्तान को ऐसे आदेशों के पाठ से पहले, अपने माता पिता के सम्बन्ध मे उनके द्वारा अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के योग्य होने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उच्च ज्योति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता सन्तान को यह विचार करना चाहिए, कि उस ने श्री देवगुरु भगवान् की शरण मे आकर उपरोक्त आदेशों में से किन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की है, और उनके द्वारा उसका वा उसके माता पिता का क्या २ हित हुआ है, और फिर इस हित को सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनो मे यज्ञ साधन कर्ता सन्तान को अपने माता पिता के विविध उपकारों और उनके सात्विक भावों वा सद्गुणों पर (यदि ऐसे भाव वा सद्गुण उन में वर्तमान हों, वा रहे हों) चिन्तन करना चाहिए।

५—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता सन्तान को अपने माता पिता के सम्बन्ध मे अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय मे बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, आवश्यक होने पर श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

६—इन दिनों मे माता पिता विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना करने से यज्ञ साधन कर्ता सन्तान के हृदय मे अपने

माता पिता वा पूर्वजों आदि के सम्बन्ध में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए, और उनमें से जो २ शुभ संकल्प इन्हीं दिनों में आरम्भ वा पूरे हो सकते हों, उन्हें इन्हीं दिनों में उसे आरम्भ वा पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए ।

७—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता सन्तान को अपने माता पिता के साथ अपने सम्बन्ध को गाढ़ करने के निमित्त एक वा दूसरे प्रकार का यत्न करना चाहिए ।

८—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने माता पिता के कल्याण के लिए मंगल कामना करनी चाहिए ।

मात-पिता सन्तान व्रत

१—व्रत साधन से पहले अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को भली भान्त परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए ।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रातःकाल में ही व्रत का साधन करना चाहिए ।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उज्ज्वल वस्त्र पहन कर नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का सम्मिलित साधन करना चाहिएः—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन ।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित पाठ वा गान ।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम ।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना ।

(५) व्रत सम्बन्धी आवश्यक आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण, अथवा माता पिता और सन्तान के सम्बन्ध मे कोई उपदेश।

(६) इस व्रत के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना जो २ कुछ मोक्ष वा विकास विषयक हित साधन किया हो, उस पर चिन्तन और व्रत स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि उच्च भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष में परस्पर के सम्बन्ध को और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना।

(८) महा वाक्य का उच्चारण:—
ओं उच्चगति, उच्चगति,
एकता, एकता, परम एकता।

४—व्रत के दिन यथा सम्भव माता पिता और उनकी सन्तान को आपस में मिलकर और अन्य दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन करना चाहिए।

केवल माता पिता और उनकी सन्तान का सम्मिलित साधन

१. सन्तान की ओर से

१—माता पिता अथवा उन मे से जो उसके समीप वर्तमान हो, उनका पुष्पहार के द्वारा अर्चन।

२—माता पिता के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार कोई भेंट * ।

* यदि माता पिता किसी और स्थान मे वास करते हो, तो वह भेंट अवसर पाकर उसी स्थान में उनके पास भेज देनी चाहिए।

३—माता पिता के सम्बन्ध में यज्ञ विषयक किसी गीत का गान।

४—माता पिता के सम्बन्ध में भाव प्रकाश।

५—माता पिता के चरणों में प्रणाम और उन से आशीर्वाद प्रार्थना।

२. माता पिता की ओर से

१—सन्तान में से जो २ जन उनके वा उन मे से किसी के समीप वर्तमान हों, उनका पुष्पहार के द्वारा अर्चन।

२—प्रत्येक सन्तान को कुछ २ उपहार*।

३—सन्तान के सम्बन्ध मे यज्ञ विषयक किसी गीत का गान।

४—सन्तान के सम्बन्ध में भाव प्रकाश और आशीर्वाद दान।

५—महावाक्य का उच्चारण—

ओं उच्चगति, उच्चगति,
एकता, एकता, परम एकता।†

---

* यदि सन्तान किसी और स्थान में हो, तो यह सकल्प-कृत उपहार अवसर पाकर उसी जगह उसके पास भेज देना चाहिए।

† भगवान् देवात्मा ने ही इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान मे "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार, उच्चारण करने का आदेश दिया है।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

भाई भग्नि यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

भाई भग्नि यज्ञ

भाई बहिनों के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक बहिन को अपने पिता अपनी माता वा दोनों का अंश जानकर उसके साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध अनुभव करे।

२—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक बहिन के सम्बन्ध में अपने आपको प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने और मुक्त रखने, और प्रत्येक उच्चगति दायक भाव के जाग्रत और उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. सन्मान भाव

३—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक बहिन के प्रति अपने मिलने जुलने, उठने बैठने, बात चीत और पत्र व्यवहार आदि के वर्ताव में उचित रूप से आदर सन्मान प्रदर्शन करे।

३. स्नेह भाव

४—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा अवसर अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन के साथ हितकर बात चीत और पत्र व्यवहार के द्वारा उसके प्रति अपने हृदय में स्नेह भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

५—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा अवसर अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन के साथ

निर्दोष खान पान में योग देकर उसके प्रति अपने हृदय में स्नेह भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

६—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा अवसर अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन के साथ निर्दोष खेल, व्यायाम, भ्रमण वा किसी अन्य उचित क्रिया में योग देकर उसके प्रति अपने हृदय में स्नेह भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

७—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह समय २ में अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन को अपनी योग्यता के अनुसार उचित उपहार देकर अपने हृदय में उसके प्रति स्नेह भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

८—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन के पारिवारिक शुभ अनुष्ठानों वा अन्य आनन्दकारी अवसरों में यथा साध्य योग वा उपहार देकर उसके प्रति अपने हृदय में स्नेह भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

४. कृतज्ञ भाव

९—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक उपकारी भाई वा बहिन के उपकारों को बार २ स्मरण करके उसके प्रति अपने हृदय में कृतज्ञ भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा और उसे अपनी विविध क्रियाओं से प्रदर्शन करे।

५. अधिकार रक्षा

१०—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन के उचित अधिकार की भली भान्त रक्षा करे।

११—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन के साथ किसी पैतृक सम्पत्ति के लाभ करने पर, उसकी बांट करने में राज्य विधि की पूर्णरूप से रक्षा करे।

६. सहाय और सेवा

१२—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार जहां तक सम्भव हो, अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक बहिन के शुभ कामों में साथी और सहायक बने।

१३—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता और अपने अधिकार की सीमा के अनुसार अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन की प्रत्येक अपराध वा पाप-मूलक क्रिया से रक्षा करने की चेष्टा करे।

१४—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक बहिन की आवश्यकता और अपनी योग्यता के अनुसार उसकी सब प्रकार की उत्तम शिक्षा की प्राप्ति में उचित रूप से सहाय करे।

१५—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई वा अपनी प्रत्येक बहिन की आवश्यकता और अपनी योग्यता के अनुसार उसके उच्च जीवन के विकास में उचित रूप से सहाय करे।

१६—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार जहां तक सम्भव हो, अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक बहिन की पीड़ा वा रोगी अवस्था में उचित रूप से सहाय और शुश्रूषा करे।

१७—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी विपद्‌ग्रस्त अथवा असहाय भाई और बहिन को, जहां तक सम्भव हो, विधेय आश्रय और उचित सहाय दे।

१८—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता क लिए आवश्यक है, कि वह यथा साध्य और यथा सम्भव अपने किसी भाई की असहाय पत्नी और अपने भाई वा बहिन के असहाय बच्चों को विधेय आश्रय दे, और उनके प्रत्येक शुभ में उचित रूप से सहायक बनें।

७. हानि परिशोध

१९—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक बहिन के प्रति अपने किसी अपराध वा पाप के विषय में बोध लाभ करने पर, आवश्यक रूप से हानि परिशोध करके, उसके सम्बन्ध मे अपने हृदय को पवित्र करे।

८. मंगल कामना

२०—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक बहिन के शुभ के लिए कामना करे।

वर्ज्जित कर्म्म

१—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी भाई और अपनी किसी बहिन की उचित स्वाधीनता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे।

२—भाई भगिन यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी भाई वा अपनी किसी बहिन के किसी उचित अधिकार को किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे।

३—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जानबूझकर अपनी किसी बात चीत वा क्रिया के द्वारा अपने किसी भाई वा अपनी किसी बहिन को किसी प्रकार का अनुचित दुःख वा क्लेश न पहुँचावे।

४—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी भाई वा अपनी किसी बहिन से किसी विषय में मतभेद रखने के कारण उसे किसी प्रकार का अनुचित दुःख वा क्लेश न पहुँचावे।

५—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सम्भव और यथा साध्य जान बूझकर, अपने किसी भाई वा अपनी किसी बहिन के रोग वा क्लेश के समय उसकी शुश्रूषा और सहाय करने से विमुख न हो।

६—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी भाई वा अपनी किसी बहिन के साथ किसी पैतृक सम्पत्ति के बाटने में राज्य विधि के विरुद्ध कोई क्रिया न करे।

७—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा साध्य अपने किसी भाई वा अपनी किसी बहिन को किसी विपद् वा असहाय अवस्था में उसे आवश्यक और उचित आश्रय वा सहाय देने से विमुख न हो।

८—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा साध्य अपने किसी भाई की असहाय पत्नी और उसके असहाय बच्चों अथवा अपनी किसी बहिन के अनाथ और असहाय बच्चों को उचित आश्रय और सहाय देने से विमुख न हो।

९—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विषय में हितकर ज्ञान वा शिक्षा लाभ करके उससे

अपने किसी भाई वा अपनी किसी बहिन को यथा साध्य लाभ पहुंचाने अथवा उसके लाभ में उचित सहाय देने से विमुख न हो।

१०—भाई भग्नि यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, अपने किसी भाई वा अपनी किसी बहिन की नीच गतियों से मोक्ष और उसके उच्च जीवन के विकास में सहाय करने से विमुख न हो।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता भाई वा बहिन के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं :—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भाई वा बहिन को भाई भग्नि यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता को उनके द्वारा अपने भाई बहिनों के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उच्च ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिये।

३—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भाई बहिन को यह विचार करना चाहिए, कि उसने श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर पूर्वोक्त आदेशों में से किन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की है, और उनके द्वारा उसका वा उनका क्या २ उपकार हुआ है, और फिर उस उपकार को सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को अपने भाई बहिनों के सम्बन्ध मे अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध

प्राप्त करने पर उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथा आवश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने प्रत्येक भाई भग्नि के सद्गुणों पर विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए।

६—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने किसी भाई वा अपनी किसी वहिन की किसी हीनता वा नीचता वा उसके किसी अभाव के विषय में अवगति लाभ करने और उसके दूर करने की सामर्थ्य रखने पर, उसके दूर करने के निमित्त आवश्यक उपाय सोचना और अवलम्बन करना चाहिए।

७—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने भाई वहिनों के प्रति अपने सद्भाव को विशेष रूप से बढ़ाने के निमित्त एक वा दूसरी चेष्टा करनी चाहिए।

८—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को यथा साध्य अपने प्रत्येक भाई और अपनी प्रत्येक वहिन के साथ विशेष रूप से सदालाप वा पत्र व्यवहार करना चाहिए।

९—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को एक दूसरे की हितकर जीवन कथाओं का वर्णन वा पाठ वा श्रवण वा आवश्यकता और योग्यता होने पर उन्हें लिपिबद्ध करना चाहिए।

१०—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को अपने इस लोक और परलोक वासी प्रत्येक भाई भग्नि के लिए विशेष रूप से मंगल कामना करनी चाहिए।

भाई भग्नि व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को समय से पहले परिष्कार और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन जहां तक संभव हो, वहां तक प्रातः काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार सम्मिलित साधन करना चाहिए :—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ या श्रवण, अथवा भाई बहिनों के सम्बन्ध के विषय में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के द्वारा प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना जो कुछ मोक्ष वा विकास विषयक हित साधन किया हो, उस पर चिन्तन और उसे स्मरण करके यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष में परस्पर के सम्बन्ध को और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना।

(८) महावाक्य का उच्चारण :—
ओं उच्चगति, उच्चगति,
एकता, एकता, परम एकता ।*

५—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन खाना चाहिए।

६—व्रत के दिन एक स्थान में वर्तमान भाई बहिनों को मिलकर आहार करना चाहिए।

केवल एक परिवार के भाई बहिनों के लिए सम्मिलित साधन की विधि

१—भाई बहिनों में से जो २ जन साधन में वर्तमान हों, वह एक दूसरे का पुष्पहार के द्वारा अर्च्चन करें।

२—प्रत्येक भाई बहिन एक दूसरे को कोई न कोई वस्तु उपहार दे।

३—प्रत्येक भाई बहिन एक दूसरे के सम्बन्ध मे अपने २ भावों का प्रकाश करें।

४—सब भाई बहिन मिलकर भाई भगिन यज्ञ विषयक किसी गीत का गान करे।

५—सब भाई बहिन एक दूसरे को उचित रूप से प्रणाम करके वा आशीर्वाद देके यह साधन समाप्त करे।

---

* परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोड़कर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

देव समाज यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

देवसमाज यज्ञ

देवसमाज के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज में श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों के अनुपम और महा हितकर कार्य को देखकर और उसमें अपने आत्मा के उद्धार और विकास के लिए अति उच्च और अमूल्य सामग्री को पाकर, उसके साथ अपना घनिष्ट सम्बन्ध अनुभव करे।

२—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज की गठन में अपने आप को एक अंग अनुभव करे।

३—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज के सम्बन्ध में अपने आपको प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने और मुक्त रखने, और प्रत्येक उच्चगति दायक भाव के जाग्रत वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भांत अनुभव करे।

४—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आपको देवसमाज की गठन में एक अंग जानकर उसके प्रत्येक विभाग की उन्नति के लिए अपने हृदय में आकांक्षा अनुभव करे।

२. सामाजिक तत्व ज्ञान

५—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और भली भांत उपलब्ध करे, कि नाना जन दल-बद्ध होकर ही किसी शुभ लक्ष्य वा कार्य मे उन्नति कर सकते हैं।

६—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और भली भांत उपलब्ध करे, कि एक लक्ष्यधारी नाना जन परस्पर आबद्ध होकर ही कोई शक्ति शाली समूह बन सकते हैं।

७—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और भली भांत उपलब्ध करे, कि मनुष्य शरीर के नाना अंगों की न्याईं नाना जन अपने २ अधिकार के अनुसार ही नाना प्रकार के अंग बनकर किसी हितकर समाज की गठन में सम्मिलित हो सकते हैं।

८—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और भली भांत अनुभव करे, कि जैसे मनुष्य शरीर की रक्षा और पालना के निमित्त उसके प्रत्येक अंग के लिए उसमें सहायक और सेवाकारी बनना आवश्यक है, वैसे ही समाज रूपी वृहत् और महा कल्याणकारी शरीर की रक्षा और उन्नति में उसके प्रत्येक अंग रूपी जन के लिए सहायक और सेवाकारी बनना आवश्यक है।

३. मुख्य उद्देश्य और साधन

९—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और उपलब्ध करे, कि देवसमाज संस्थापक की शिक्षा और विधि के अनुसार,

(अ) जहां तक सम्भव हो मनुष्य मात्र में देव धर्म विषयक सत्यज्ञान का प्रचार, और

(इ) जहां तक सम्भव हो, उनके आत्माओं की नीच गति दायक सब प्रकार की शक्तियों से मोक्ष और उच्च गति दायक शक्तियों में विकास साधन करना ही, देवसमाज के स्थापन करने का मुख्य उद्देश्य और मुख्य कार्य है।

१०—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और भली भांत उपलब्ध करे, कि देवसमाज परिषद्, कर्मचारी, पुस्तकें और समाचार पत्र, धर्म विकासालय, साधनाश्रम, लड़के और लड़कियों के नाना विद्यालय, विविध धन भण्डार, विधवा और सधवा आश्रम, सेवा समितियां, अनाथालय आदि संस्थाएं उपरोक्त उद्देश्य की सिद्धि के लिए केवल सहाय स्वरूप हैं।

४. सामाजिक गठन

११—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और भली भांत उपलब्ध करे, कि देवसमाज की गठन में उसके मुख्य उद्देश्य के अनुसार उसके सेवक और श्रद्धालु वा सहायक केवल **अपनी २ आत्मिक योग्यता** के अनुसार ही अपेक्षाकृत उच्च वा निम्न स्थान पा सकते हैं।

१२—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और भली भांत उपलब्ध करे, कि क्या सारी देवसमाज और क्या उसके किसी विभाग के परिचालन के वही जन अधिकारी हो सकते हैं, कि जो उसके आदर्श के सम्बन्ध में यथेष्ट रूप से अनुरागी बन चुके हों, और उसके पूरा करने के निमित्त व्रती बनने की योग्यता रखते हो।

५. सामाजिक शासन

१३—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और भली भांत उपलब्ध करे, कि सामाजिक गठन में अंग बन कर प्रत्येक जन के लिए उचित सीमा तक सामाजिक शासन के आधीन रहना आवश्यक है।

१४—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देव समाज का अंग बनकर अपने हृदय में शासन विषयक

बाध्य-भाव के जाग्रत और उन्नत करने के लिए चेष्टा करे, और उसका जो भाव उसमें बाधाकारी हो, उसे दमन करने का अभ्यास करे।

६. सामाजिक सेवा

१५—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार देवसमाज की धर्म विषयक सत्य शिक्षा और उसके विविध प्रकार के हितकर कार्यों की महिमा का वर्णन करके और लोगों में उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करके उसके लिए सेवाकारी बने।

१६—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर देवसमाज के विषय में अच्छे २ लेखों और पुस्तकों की रचना और उनका प्रकाशन करके, उसके लिए सेवाकारी बने।

१७—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार देवसमाज सम्बन्धी पुस्तकों और समाचार पत्रों का प्रचार करके, उसके लिए सेवाकारी बने।

१८—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार देवसमाज मे सेवकों, श्रद्धालुओं और सहायकों की संख्या को बढाकर, उसके लिए सेवाकारी बने।

१९—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर देव समाज की ग्रहीत पुस्तकों में से किसी एक वा दूसरी पुस्तक का किसी भाषा में अनुवाद करके उसके प्रकाश के द्वारा, उसके लिए सेवाकारी बने।

२०—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर कोई समाचार पत्र सम्पादन वा प्रकाशन करके, देव समाज के लिए सेवाकारी बने।

२१—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज की विविध संस्थाओं की उन्नति के लिए जहां तक अपनी योग्यता के अनुसार,

(अ) अपना धन, अपनी धरती वा अन्य सम्पत्ति दे सकता हो,

(इ) अपने तन से परिश्रम कर सकता हो,

(उ) अपनी विद्या वा बुद्धि से सहाय कर सकता हो,

(क) अपनी किसी और शक्ति को काम में ला सकता हो, वहां तक उन्हें अर्पण करके, उसके लिए सेवाकारी बने।

२२—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज के लिए जिस किसी जन से किसी प्रकार का कोई दान वा किसी प्रकार की कोई सहाय प्राप्त कर सकता हो, उसे प्राप्त करके उसके लिए सेवाकारी बने।

७. हानि परिशोध

२३—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देव समाज के सम्बन्ध में अपनी किसी अनुचित क्रिया के लिए सामाजिक शासन की ओर से सूचित किए जाने पर अथवा अपने आप बोध प्राप्त करने पर, किसी उचित क्रिया वा उचित परिशोध के द्वारा उसके साथ अपने सम्बन्ध को पवित्र करे।

८. मंगल कामना

२४—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर देवसमाज की विविध संस्थाओं और उनके परिचालकों को स्मरण करके सरल भाव से उनकी उन्नति के लिए मंगल कामना करे।

वर्जित कर्म

१—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने हृदय में देवसमाज के प्रति किसी प्रकार का विरोधी भाव न रक्खे।

२—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज के सम्बन्ध में कोई ऐसी चिन्ता वा क्रिया न करे, कि जिससे देवसमाज के साथ उसके सम्बन्ध के कुछ भी शिथिल हो जाने की संभावना तक हो।

३—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज के सम्बन्ध मे अपनी प्रतिज्ञाओं के विरुद्ध कोई ऐसी बात चीत वा अन्य क्रिया न करे, कि जिससे उसे वा उसकी समाज को किसी प्रकार की हानि पहुंच सकती हो।

४—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी समाज को किसी के द्वारा किसी प्रकार की हानि पहुंचती हुई देखकर, यथा शक्ति उसके दूर करने से विमुख न हो।

५—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने पारिवारिक और अन्य जनों मे देवसमाज के प्रति श्रद्धा उत्पन्न वा वर्द्धन करने से विमुख न हो।

६—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज के सम्बन्ध मे किसी एक वा दूसरे प्रकार के अभाव को जानकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसके दूर करने के निमित्त आवश्यक सहाय करने से विमुख न हो।

७—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज के द्वारा विविध प्रकार का हित पाकर उसके प्रति कभी कृतघ्न न बने।

८—देवसमाज यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज की किसी संस्था की उन्नति के सम्बन्ध में उदासीन न रहे।

वार्षिक यज्ञ

देवसमाज विषयक वार्षिक यज्ञ के दिनों में प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता को देवसमाज यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता को देवसमाज के सम्बन्ध में उनके द्वारा अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उच्च ज्योति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को देवसमाज के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथा आवश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—देवसमाज के साथ योग करके यज्ञ साधन कर्ता ने अपना और औरों का जो २ कुछ हित किया हो, उस पर इन दिनों में बारम्बार विचार करना चाहिए।

६—इन दिनों में अपने साधन स्थान में देवसमाज की **एकता पताका*** को विशेष रूप से सुसज्जित करना चाहिए, और वह जिस आदर्श की सूचक है, उस के सम्बन्ध में पाठ और विचार करना चाहिए।

७—इन दिनों में देवसमाज के किसी विभाग के सम्बन्ध में एक या दूसरे प्रकार की सेवा करनी चाहिए।

८—इन दिनों में सब समाजोत्सवों के निर्विघ्न रूप से पूर्ण होने और उन में श्री देवगुरु भगवान् के अधिक से अधिक देव प्रभावों के प्रकाश के निमित्त उन से प्रार्थना करनी चाहिए।

९—इन दिनों में आवश्यक होने पर समाज के किसी उत्सव क्षेत्र में कुछ दिन पहले से पहुंच कर उसके आयोजन कार्य में उत्साह पूर्वक भाग लेना चाहिए।

१०—इन दिनों में देवसमाज की अवस्था और उन्नति के विषय पर चिन्तन और विचार करके अपने ऐसे शुभ संकल्पों को अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए, और उन्हें उत्सव सम्बन्धी किसी निर्दिष्ट सभा में विचार के लिए उपस्थित करना चाहिए।

देवसमाज व्रत

१—देवसमाज परिषद् की ओर से प्रकाशित कार्य प्रणाली के अनुसार उसके विविध क्षेत्रों में समाजव्रत का सम्मिलित साधन होना चाहिए।

२—समाजोत्सव सम्बन्धी प्रत्येक स्थान को जहां तक सम्भव हो, भली भांत परिष्कार और सुसज्जित करना चाहिए।

---

*इसके अनन्तर श्री देवगुरु भगवान् ने इसका नाम 'भगवान् देवात्मा का विजय पताका' रख दिया था।

३—जिस उत्सव क्षेत्र में कोई यात्री योग देना चाहता हो, उसमें उसे, जहां तक सम्भव हो, प्रथम सभा से कुछ काल पहले ही पहुंच जाना चाहिए।

४—उत्सव क्षेत्र में यात्रियों के ठहरने और उनके आहार आदि का उचित रूप से प्रबन्ध होना चाहिए।

५—उत्सव क्षेत्र में यात्रियों की आवश्यक सेवा और शुश्रूषा का उचित रूप से प्रबन्ध होना चाहिए।

६—उत्सव क्षेत्र के किसी स्थान को जहां तक सम्भव हो, किसी यात्री को मैला और भ्रष्ट न करना चाहिए।

७—उत्सव क्षेत्र में जो स्थान जिस काम के लिए नियत हुआ हो, उसमें जहां तक सम्भव हो, केवल वही काम होना चाहिए।

८—उत्सव सम्बन्धी जिस २ कार्य सम्पादन का बोझा जिस २ जन पर रक्खा गया हो, उसे अपने २ कार्य को अपनी सामर्थ्य के अनुसार उत्तम से उत्तम रूप से सम्पादन करना चाहिए।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

पति पत्नी यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

पति पत्नी यज्ञ

पति पत्नी के सम्बन्ध में आदेश

पत्नी के लिए

१. सम्बन्ध बोध

१—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति और उसके पिता माता और भाई बहिनों आदि के साथ अपना सच्चा सम्बन्ध अनुभव करे।

२—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति और उस के पिता माता और भाई बहिनों आदि सब सम्बन्धियों के सम्बन्ध में अपने आपको प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने और मुक्त रखने और प्रत्येक उच्च गति दायक भाव को जाग्रत अथवा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. सन्मान भाव

३—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने समस्त दैनिक वर्तावों मे अपने धर्म पति के प्रति उचित रूप से सन्मान प्रदर्शन करे।

४—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के पिता माता और भाई बहिनों आदि सब सम्बन्धियों के प्रति उनकी मर्यादा के अनुसार उचित रूप से आदर और सन्मान प्रदर्शन करे।

५—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति और उसके माननीय सम्बन्धियों की प्रत्येक उचित बात को आदर और ध्यान पूर्वक सुने।

६—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति वा उसके पिता माता भाई और वहिन आदि किसी सम्बन्धी के मर जाने पर भी, उसे और उन्हें सन्मान भाव से स्मरण करे, और किसी और के निकट भी सन्मान भाव से उसका और उनका वर्णन करे।

३. प्रीति भाव

७—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह प्रत्येक निर्दोष विधि के द्वारा, जहा तक सम्भव हो, अपने धर्म पति और उसके पिता माता और भाई वहिनों आदि सब सम्बन्धियों के लिए अपने आपको प्रिय बनाने की चेष्टा करे।

८—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति और उसके पिता माता वा भाई बहिनों आदि सम्बन्धियों को अपने सब प्रकार के उचित वर्तावों के द्वारा सदा प्रसन्न करने की चेष्टा करे।

९—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी अवस्था के अनुसार जहां तक उचित हो, अपने धर्म पति के साथ रहे।

१०—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के साथ निर्दोष खान पान, खेल, व्यायाम, भ्रमण वा किसी और शुभ काम मे योग देकर उसके प्रति अपने हृदय मे स्नेह भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

११—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के साथ हृदय खोलकर बात चीत करने के द्वारा उसके प्रति अपने स्नेह भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

१२—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के सन्मुख जहां तक अवस्था के अनुसार उचित और सम्भव हो, अपना प्रफुल्ल मुख प्रदर्शन करे।

१३—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने पति और उसके पिता माता और भाई बहिनों आदि संबंधियों के सद्गुणों पर चिन्तन करके उसके और उनके प्रति अपने हृदय में सद्भावों को उत्पन्न वा उन्नत करे

४. गृह कर्म

१४—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर को बहुत परिष्कार और अपने पद और अपनी अवस्था के अनुसार सुसज्जित रक्खे।

१५—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर की सब वस्तुओं को परिष्कार, सुन्दर और परिपाटी की अवस्था में रक्खे।

१६—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर के सब कामों को ठीक समय में पूरा करे।

१७—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर के सब कामों को किसी उचित प्रणाली के साथ पूरा करे।

१८—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी अवस्था के अनुसार गृह विषयक सब प्रकार की आवश्यक वस्तुएं अपने घर में संचित करके रक्खे।

१९—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर के सब कामों को प्रसन्नता पूर्वक भली भान्त पूरा करे वा कराए।

२०—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर को अपने और अपने परिवार के सब लोगों के लिए जहां तक सम्भव हो, सब प्रकार से हितकर और उचित रूप से सुखकर बनाने की चेष्टा करे।

२१—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है; कि वह गृह विषयक सब कामों में मितव्ययता के नियम को भली भान्त पालन करे।

५. सहाय और सेवा

२२—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह क्या पारिवारिक और क्या किसी अन्य विषय में अपनी योग्यता के अनुसार अपने धर्म पति को उचित परामर्श दे।

२३—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति की किसी कठिनाई वा विपद् के समय उसे सहारा और उचित रूप से सहाय दे; और उस में आप भी उचित रूप से भागी बने।

२४—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए उचित है, कि वह आवश्यक होने पर, अपने धर्म पति के किसी व्यवसाय में अपनी योग्यता के अनुसार सहाय करे।

२५—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, अपने धर्म पति की प्रत्येक शुभ गति में साथी और सहायक बने।

२६—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता और अपने अधिकार की सीमा के अनुसार अपने धर्म पति की प्रत्येक अशिष्ट, अपराध वा पाप-मूलक क्रिया से रक्षा करने की चेष्टा करे।

२७—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता और आवश्यकता के अनुसार, किसी उत्तम शिक्षा और विद्या आदि के उपार्जन में अपने धर्म पति की उचित रूप से सहायता करे।

२८—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के उच्च जीवन के विकास में यथा साध्य सहाय करे।

२९—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, अपने धर्म पति और उसके पिता माता और भाई बहिनों आदि सम्बन्धियों की पीड़ा वा रोगी अवस्था में सहाय और शुश्रूषा और अन्य सब प्रकार की उचित सेवा करे।

६. धन उपार्जन

३०—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए यह उचित कर्म है, कि वह आवश्यक बोध करने पर किसी उचित उपाय से, अपने वा अपने पति के लिए धन उपार्जन करे।

७. परिशोध

३१—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के सम्बन्ध मे अपने किसी पाप वा अपराध वा अपनी किसी अनुचित क्रिया के विषय में बोध लाभ करने पर उचित परिशोध करके उसके साथ अपने सम्बन्ध को पवित्र करे।

८. मंगल कामना

३२—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर अपने धर्म पति और उसके पिता माता आदि विविध सम्बन्धियों के लिए मंगल कामना का साधन करे।

वर्जित कर्म

१—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह क्या अपने धर्म पति और क्या उसके पिता माता और भाई बहिनों आदि सम्बन्धियों के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शन और उनके किसी

रोग वा कष्ट वा विपद् आदि के समय उचित सहाय शुश्रूषा और सेवा करने से कभी विमुख न हो।

२—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति को उसके कुल वा उसकी किसी स्वभाविक वा अनिवार्य्य हीनता वा त्रुटि के कारण कभी घृणा न करे।

३—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के साथ किसी विषय में मत भेद रखने पर, उसे किसी प्रकार का अनुचित क्लेश न दे।

४—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के किसी उचित अधिकार में किसी प्रकार की बाधा न दे।

५—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के साथ अपने पवित्र सम्बन्ध को व्यभिचार सम्बन्धी किसी पाप, और काम प्रवृत्ति सम्बन्धी किसी अनुचित क्रिया के द्वारा भ्रष्ट न करे, और अपने वा उसके लिए हानिकारक न बनावे।

६—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के साथ कभी वृथा विवाद अथवा कलह न करे।

७—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी नीच भाव से परिचालित होकर अपने घर की किसी वस्तु की हानि न करे।

८—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि उसका धर्म पति जिस २ समय में घर मे रहता हो, अथवा बाहर से घर में आता हो, उस समय में किसी उचित और विशेष कारण के भिन्न घर से बाहर न रहे, और न जावे।

९—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति के सम्बन्ध में अपने किसी दोष वा अपराध को जान बूझकर स्वीकार करने से विमुख न हो।

१०—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति से किसी प्रतिकूल समय में कोई आवेदन वा किसी के सम्बन्ध में कोई अभियोग न करे।

११—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह उचित कारण के बिना अपने धर्म पति वा अपने परिवार वा किसी वंशीय सम्बन्धी की किसी गोपनीय बात को किसी पर प्रगट न करे।

१२—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने धर्म पति की अनुमति के भिन्न घर की कोई वस्तु किसी को न दे।

१३—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह जान बूझकर अपने धर्म पति की किसी वस्तु की कभी हानि न करे, वा उसकी किसी हानि में सहायक न बने।

१४—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे जन से मेल जोल न रक्खे, कि जिसके संग से उसके पति वा उसके पिता माता और भाई बहिनों आदि के साथ उसके सम्बन्ध के शिथिल होने की आशंका हो वा उसका सम्बन्ध शिथिल होता हो।

१५—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह उचित कारण के बिना किसी के सन्मुख अपने धर्म पति का कोई दोष वा अपराध वर्णन न करे।

१६—प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए आवश्यक है, कि वह उचित कारण के बिना कोई बात अपने धर्म पति से गुप्त न रक्खे।

वार्षिक यज्ञ

पति पत्नी विषयक वार्षिक यज्ञ के दिनों में प्रत्येक धर्म पत्नी के लिए जिन साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं :—

१—इन दिनों में प्रत्येक धर्म पत्नी को यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनो मे प्रत्येक धर्म पत्नी को उपरोक्त आदेशों के पाठ वा श्रवण से पहले उनके द्वारा अपने पति के सम्बन्ध मे अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उच्च ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—इन दिनों में प्रत्येक धर्म पत्नी को विचार करना चाहिए, कि उसने श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर पूर्वोक्त आदेशों में से किन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की है, और उनके द्वारा उसका और उसके पति का क्या २ हित हुआ है; फिर इस सब हित को सन्मुख लाकर उसे श्री देवगुरु भगवान् के प्रति अपने धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों मे प्रत्येक धर्म पत्नी को अपने धर्म पति के सम्बन्ध मे अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथा आवश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों में प्रत्येक धर्म पत्नी को अपने धर्म पति के सद्गुणों पर विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए।

६—इन दिनों में प्रत्येक धर्म पत्नी को अपने पति की किसी हीनता वा नीचता वा उसके किसी अभाव के विषय में अवगति लाभ करने और उसके दूर करने की सामर्थ्य रखने पर,

उसके दूर करने के निमित्त आवश्यक उपाय सोचना और अवलम्बन करना चाहिए।

७—इन दिनों में प्रत्येक धर्म पत्नी को अपने पति के प्रति अपने सद्भाव को विशेष रूप से बढाने के निमित्त चेष्टा करनी चाहिए।

८—इन दिनों मे प्रत्येक धर्म पत्नी को यथा साध्य अपने पति के साथ विशेप रूप से सदालाप अथवा पत्र व्यवहार करना चाहिए।

९—इन दिनों में प्रत्येक धर्म पत्नी को अपने पति की हितकर जीवन कथाओं का वर्णन वा पाठ वा श्रवण करना वा उनके विपय में लेख लिखना चाहिए।

१०—इन दिनों में प्रत्येक धर्म पत्नी को अपने इस लोक वा परलोक वासी पति के लिए विशेष रूप से मंगल कामना करनी चाहिए।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

पति पत्नी यज्ञ

पति पत्नी के सम्बन्ध में आदेश

पति के लिए

१. सम्बन्ध बोध

१—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के साथ अपना मित्रवत् शुभ सम्बन्ध अनुभव करे।

२—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के सम्बन्ध में अपने आपको प्रत्येक नीचगति से मुक्त करने और मुक्त रखने, और प्रत्येक उच्च गति दायक भाव के जाग्रत वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. सन्मान भाव

३—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपने समस्त दैनिक बर्तावों मे अपनी धर्म पत्नी के प्रति उचित रूप से सन्मान प्रदर्शन करे।

४—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के सम्बन्धियों के प्रति उनकी मर्य्यादा के अनुसार उचित रूप से आदर और सन्मान प्रदर्शन करे।

५—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी की प्रत्येक उचित बात को आदर और ध्यान पूर्वक सुने।

६—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के मर जाने पर भी, उसे सन्मान भाव से स्मरण करे, और किसी और के निकट भी सन्मान भाव से उसका वर्णन करे।

३. प्रीति भाव

७—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह प्रत्येक निर्दोष विधि के द्वारा, जहां तक सम्भव हो, अपनी धर्म पत्नी के लिए प्रिय बनने की चेष्टा करे।

८—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रति अपनी धर्म पत्नी की उचित प्रसन्नता के लाभ करने के लिए सदा चेष्टा करे।

९—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी अवस्था के अनुसार जहां तक उचित हो, अपनी धर्म पत्नी के साथ रहे।

१०—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के साथ निर्दोष खान पान, खेल, व्यायाम, भ्रमण वा किसी अन्य शुभ काम में योग देकर उसके प्रति अपने हृदय मे स्नेह भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

११—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी से हृदय खोलकर बात चीत करने के द्वारा, उसके प्रति अपने स्नेह भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

१२—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के सद्गुणों पर चिन्तन करके, उसके प्रति अपने स्नेह भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

४. भार ग्रहण

१३—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह किसी उचित कारण के बिना अपनी धर्म पत्नी के खाने पीने, वस्त्र और आभूषण आदि विषयक सब प्रकार के आवश्यक व्यय अपनी योग्यता और मर्यादा के अनुसार पूरे करे।

५. सहाय और सेवा

१४—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी की योग्यता अनुसार उससे क्या पारिवारिक और क्या किसी अन्य विषय मे परामर्श ले।

१५—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी की किसी कठिनाई वा विपद् के समय उसे साहस और सहाय दे, और उस में उचित रूप से आप भी धैर्य्य पूर्वक भागी बने।

१६—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, अपनी धर्म पत्नी की प्रत्येक शुभ गति में साथी और सहायक बने।

१७—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता और अपने अधिकार की सीमा के अनुसार अपनी धर्म पत्नी की प्रत्येक अशिष्ट, अपराध वा पाप-मूलक क्रिया से रक्षा करने की चेष्टा करे।

१८—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह किसी उत्तम शिक्षा वा विद्या के उपार्जन में अपनी धर्म पत्नी की अपनी योग्यता के अनुसार उचित रूप से सहाय करे।

१९—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के उच्च जीवन के विकास में यथासाध्य सब प्रकार से सहाय करे।

२०—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के किसी रोग वा शोक वा उसकी किसी पीड़ा के समय अपनी योग्यता के अनुसार उचित रूप से उसकी सहाय वा शुश्रूषा करे।

६. परिशोध

२१—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के सम्बन्ध में अपने किसी पाप वा अपराध वा अपनी किसी अनुचित क्रिया के विषय में बोध लाभ करने पर, उचित परिशोध करके उसके साथ अपने सम्बन्ध को पवित्र करे।

७. मंगल कामना

२२—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी को स्मरण करके उसके लिए मंगल कामना का साधन करे।

वर्जित कर्म

१—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के जीते जी, और उसके मर जाने पर भी, उसके और उसके सम्बन्धियों के प्रति उचित सन्मान प्रदर्शन करने से विमुख न हो।

२—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी को उसके कुल वा उम्र की किसी स्वाभाविक वा अनिवार्य्य हीनता के कारण घृणा न करे।

३—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के साथ किसी विषय में मत भेद रखने पर, उसे किसी प्रकार का अनुचित क्लेश न दे।

४—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के उचित अधिकार में किसी प्रकार की बाधा न दे।

५—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के साथ अपने पवित्र सम्बन्ध को व्यभिचार सम्बन्धी किसी पाप, अथवा काम-मूलक किसी अनुचित क्रिया के द्वारा भ्रष्ट न करे।

६—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के साथ कभी वृथा विवाद और कलह न करे।

७—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी की ओर से अपने माता पिता वा भाई वहिन वा भावज आदि किसी संवंधी के विषय में किसी अभियोग को सुनकर विना उस की सत्यता के विषय में पूर्ण रूप से अनुसन्धान और निश्चय करने के विश्वास न करे, और उनसे कटकर उनके साथ अपने संवंध को कोई अनुचित हानि न पहुंचावे।

८—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह किसी आवश्यक और उचित कारण के भिन्न अपने घर से वाहर रह कर अपनी पत्नी के लिए कष्ट दायक न वने।

९—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के सम्वन्ध में अपने किसी दोष वा अपराध को जान बूझकर स्वीकार करने से विमुख न हो।

१०—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह किसी अनुचित समय में अपनी धर्म पत्नी से संग न करे।

११—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह उचित कारण के बिना अपनी धर्म पत्नी वा अपने परिवार की किसी गोपनीय वात को किसी पर प्रगट न करे।

१२—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के निज के धन वा आभूषण वा उसकी किसी निज की सम्पत्ति वा वस्तु को उसकी अनुमति के विना अपने काम में न लावे।

१३—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी धर्म पत्नी के किसी अपराध से कुपित होकर उसे प्रहार न करे।

१४—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे जन से मेल जोल न रक्खे, कि जिस के संग से उसकी पत्नी के साथ उसके पवित्र सम्बन्ध के शिथिल होने की आशंका हो, वा उसका यह सम्बन्ध शिथिल होता हो।

१५—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह उचित और आवश्यक कारण के बिना किसी के सन्मुख अपनी धर्म पत्नी का कोई दोष वा अपराध वर्णन न करे।

१६—प्रत्येक धर्म पति के लिए आवश्यक है, कि वह उचित कारण के बिना कोई बात अपनी धर्म पत्नी से गुप्त न रक्खे।

वार्षिक यज्ञ

पति पत्नी यज्ञ के दिनों मे साधन कर्ता पति के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं :—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को यज्ञ सम्बन्धी उपरोक्त आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों का पाठ और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को अपनी धर्म पत्नी के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उच्च ज्योति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को विचार करना चाहिए, कि श्री देवगुरु भगवान् की शरण मे आकर उसने पूर्वोक्त आदेशों में से किन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की है, और उनके द्वारा उसका और उसकी पत्नी का क्या २ हित हुआ है; फिर इन सारे हितों को सन्मुख लाकर उसे उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को अपनी धर्म पत्नी के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर

से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथा आवश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को अपनी धर्म पत्नी के सद्गुणों पर विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए।

६—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को अपनी धर्म पत्नी की किसी हीनता वा नीचता वा उसके किसी अभाव के विषय में अवगति लाभ करने और उसके दूर करने की सामर्थ्य रखने पर, उसके दूर करने के निमित्त आवश्यक उपाय सोचना और अवलम्बन करना चाहिए।

७—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को अपनी धर्म पत्नी के प्रति अपने सद्भाव को विशेष रूप से बढाने के निमित्त चेष्टा करनी चाहिए।

८—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को यथा साध्य अपनी धर्म पत्नी के साथ विशेष रूप से सदालाप अथवा पत्र व्यवहार आदि करना चाहिए।

९—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को अपनी धर्म पत्नी की हितकर जीवन कथाओं का वर्णन वा पाठ वा श्रवण वा उन्हें लिपिबद्ध करना चाहिए।

१०—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक धर्म पति को अपनी इस लोक वा परलोक वासी धर्म पत्नी के लिए विशेष रूप से मंगल कामना करनी चाहिए।

पति पत्नी व्रत*

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को समय से पहले परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

* शब्द 'व्रत' के स्थान मे 'के सम्बन्ध में शेष दिन का साधन' समझना चाहिए।

२—व्रत के दिन, जहां तक संभव हो, वहां तक प्रातः काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत विषयक सम्मिलित साधन करना चाहिए:—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्च्चन।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आवश्यक आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण अथवा पति पत्नी के सम्बन्ध में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के द्वारा प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना जो कुछ मोक्ष वा विकास विषयक हित साधन किया हो, उस पर चिन्तन और उसके सम्बन्ध में यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष मे परस्पर के सम्बन्ध को और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना।

(८) महावाक्य का उच्चारण —

ओं उच्चगति, उच्चगति,

एकता, एकता, परम एकता।*

---

* श्री देवगुरु भगवान् ने पीछे मे इस महावाक्य को छोड़कर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार, उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

५—व्रत के दिन साधारण दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन खाना चाहिए ।

पति पत्नी के लिए अकेले बैठकर साधन करने की विधि

१—पति पत्नी एक दूसरे का पुष्पहार के द्वारा अर्च्चन करें ।

२—पति पत्नी एक दूसरे को कोई न कोई वस्तु उपहार दे ।

३—पति पत्नी पूर्वोक्त यज्ञ के सम्बन्ध में मिल कर किसी गीत का गान करे ।

४—पति पत्नी एक दूसरे के सम्बन्ध में अपने २ भावों का प्रकाश करे ।

५—पति पत्नी महा वाक्य* का उच्चारण करके साधन समाप्त करे ।

* श्री देवगुरु भगवान् ने पीछे से इस महावाक्य को छोड़कर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है ।

उद्भिद् जगत् सम्बन्धी

उद्भिद् यज्ञ

उद्भिद् जगत् सम्बन्धी

उद्भिद् यज्ञ

उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् के साथ अपने अति घनिष्ट सम्बन्ध को भली भान्त अनुभव करे।

२—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और उपलब्ध करे, कि किसी जीवित मनुष्य वा पशु की न्याई उद्भिद् जगत् के पौदे भी एक सीमा तक अपने प्रति किसी के भले वा बुरे आचरण से हित वा हानि लाभ करते हैं।

३—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और उपलब्ध करे, कि कोई मनुष्य जैसे किसी मनुष्य वा पशु के सम्बन्ध में कोई अनुचित क्रिया करके अपने आत्मिक जीवन की हानि करता है, वैसे ही किसी पौदे वा वृक्ष के सम्बन्ध में भी कोई अनुचित क्रिया करके अपने आत्मिक जीवन की हानि करता है।

४—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने और मुक्त रखने और प्रत्येक उच्च गति के जाग्रत वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. सौन्दर्य बोध

५—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् के नाना पौदों के नाना प्रकार के सुन्दर फूलों और पत्तों और उसकी वेलों आदि को वारम्वार ध्यान पूर्वक अवलोकन करने

के द्वारा अपने हृदय में सौन्दर्य्य बोध के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

३. सुमिष्टता, सरसता और सफलता विषयक बोध

६—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् के सुमिष्ट, सरस और हितकर फलदायक वृक्षों की गठन पर विचार करके अपने हृदय को सुमिष्ट और सरस और अपने जीवन को सुफल करने की आकांक्षा को उत्पन्न वा उन्नत करे।

४. ज्ञान उपार्जन

७—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में विविध प्रकार का हितकर ज्ञान उपार्जन करने के लिए उचित रूप से चेष्टा करे।

५. उचित व्यवहार

८—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए यह उचित कर्म है, कि वह अपने आहार के लिए उद्भिद् जगत् की विविध वस्तुओं को उचित रूप से व्यवहार करे।

९—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए यह उचित कर्म है, कि वह अपने किसी शारीरिक रोग वा विकार के दूर करने के लिए उद्भिद्-जगत्-प्रसूत किसी एक वा दूसरी औषधि का सेवन करे।

१०—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए यह उचित कर्म है, कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार उद्भिद्-जगत्-प्रसूत किसी सुगन्धि अथवा सुगन्धि दायक फूलों को किसी शुभ भाव से व्यवहार करे।

११—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए यह उचित कर्म है, कि वह अपनी वा किसी और मनुष्य वा पशु की किसी आवश्यकता के निवारण वा अपने और उसके किसी शुभ के लिए उद्भिद् जगत के किसी पौदे वा वृक्ष को पूर्णत. वा उसके किसी अंश को काटे, वा किसी और प्रकार से उसका व्यवहार करे।

६. स्नेह भाव

१२—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि जो उद्भिद् जगत् अपने दानों, अपने पत्रों, अपनी जड़ों, अपने फूलों, अपने फलों, अपनी छालों, अपनी सुगन्धियों, अपने गूदों, अपने रसों, अपने सूत्रों, अपनी छाया और अपने काष्ठों आदि के द्वारा उसका और औरों का नाना प्रकार से अमूल्य हित साधन करता है, उसके इस सेवाकारी भाग के प्रति अपने हृदय में **स्नेह भाव** के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

१३—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह सौन्दर्य्य बोध रखने पर, उद्भिद् जगत् के नाना पौदों और वृक्षों के सुन्दर आकार-प्राप्त पुष्पों और पत्रो को बारम्वर अवलोकन करने के द्वारा उसके सुन्दर भाग के प्रति अपने हृदय मे स्नेह भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

१४—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि यह सौन्दर्य्य बोध रखने पर, उद्भिद् जगत् के नाना रंगों के पुष्पों और पत्रों आदि से अपने शरीर और साधनालय और अन्य स्थानों को किसी शुभ भाव से सुसज्जित करके, उसके ऐसे सुन्दर भाग के प्रति अपने हृदय में **स्नेह भाव** को उत्पन्न वा उन्नत करे।

७. कृतज्ञ भाव

१५—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद जगत् के जिन २ पौदों मे किसी प्रकार का भी हित पाता रहा वा पाता हो, उनके हित को वारम्वार स्मरण करके उनके सम्बन्ध मे अपने भीतर **कृतज्ञ अर्थात् प्रत्युपकार भाव** को उत्पन्न वा उन्नत करे।

८. रक्षा और सेवा

१६—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसने उद्भिद् जगत् के जिन २ पौदों से हित पाया हो, वा वह जिन २

पौदों से हित पाता हो, उनके सम्बन्ध में हित परिशोध अर्थात् कृतज्ञ भाव के द्वारा परिचालित होकर उनके लिए आप भी यथा साध्य नाना प्रकार से रक्षक और सेवाकारी बने।

१७—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह ऐसे प्रत्येक उद्यान वा पुष्प वाटिका वा वृक्ष वा लता वा बोए हुए क्षेत्र (खेत) वा बन आदि की जो उसकी रक्षा में हो, उचित रूप से रक्षा वा सेवा करे।

१८—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, उद्भिद् जगत् सम्बन्धी जो २ पौदे वा वृक्ष मनुष्य और पशु जगत् का जितने २ अंश हित साधन करते हों, उनकी उतने २ अंश उचित रक्षा और उन्नति में सहायक बने।

१९—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी अवस्था के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, सुन्दर फूलों वा पत्तों के थोड़े वा बहुत पौदे वा उनकी बेले रखकर अथवा एक वा कई छाया वा फलदायक वृक्ष रोपण करके, स्नेह भाव से उनकी सेवा करे।

२०—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह सामर्थ्य रखने पर, अपनी ओर से कोई नया उद्यान वा कोई पुष्प वाटिका लगाकर उसकी सेवा करे।

९. मंगल कामना

२१—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् के उन सेवाकारी पौदों वा वृक्षों का बारम्बार चिन्तन करके, कि जिनके द्वारा उसका किसी प्रकार से हित होता वा हुआ हो, उनके लिए मंगल कामना का अभ्यास करे।

वर्जित कर्म

१. अनुचित संकोच

१—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि यदि कोई मनुष्य किसी विशेष अवसर पर अपनी वा किसी और की किसी सच्ची आवश्यकता के समय, उसके उद्यान से कुछ फूल, वा उसके वृक्ष की कुछ छाल वा कोई छोटी शाखा ले लेना चाहे, वा ले ले, तो उसका देना अस्वीकृत वा उसके लेने वाले से किसी प्रकार का झगड़ा न करे।

२. अनुचित सेवन

२—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह चटनी वा अचार आदि के अतिरिक्त, जहां तक सम्भव हो, कच्चे फलों का सेवन न करे।

३—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् की किसी ऐसी खाद्य वस्तु का जो उसकी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो, सेवन न करे।

४—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् से प्राप्त सुरा, भंग, अहिफेण (अफीम), चरस, गांजा तम्बाकू और धतूरा आदि विषकर वस्तुओं का **मादकता** के लिए कभी सेवन न करे, और इस अभिप्राय के लिए किसी और को भी न दे।

३. रक्षा और सेवा में त्रुटि

५—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने लगाए हुए वृक्षों और पौदों और अपने बोए हुए खेतों की, अथवा जो वृक्ष, पौदे और खेत आदि रक्षा मे रक्खे गए हों, उनकी आवश्यक रक्षा और उचित सेवा मे त्रुटि न करे।

४. अनुचित हानि

६—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उचित और यथेष्ट कारण के बिना, किसी फल वा छाया दायक वा किसी और प्रकार के हितकर वृक्ष को पूर्णत: अथवा उसके किसी अंश को न काटे।

७—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी पौदे वा वृक्ष से किसी सच्ची आवश्यकता से अधिक फूल वा पत्ते आदि न तोड़े।

८—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उचित और यथेष्ट कारण के बिना, किसी पौदे वा वृक्ष से कच्चे फल न तोड़े और न गिरावे।

९—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी पौदे वा वृक्ष से फूल पत्ते वा उसकी किसी शाखा आदि के तोड़ने में उसे जहां तक सम्भव हो, कदाकार न बनावे।

१०—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् की किसी ऐसी वस्तु को जिसकी रक्षा वा जिसका संचय करना उसके लिए आवश्यक हो, अपनी असावधानता वा उदासीनता से किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे।

११—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी फल वा छायादार वृक्ष के नीचे के स्थान को अपनी किसी क्रिया से भ्रष्ट वा मैला न करे।

१२—उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी पौदे वा वृक्ष को किसी प्रकार की हानि पहुंचती देखकर अपनी योग्यता और अपने उचित अधिकार के अनुसार उसे हानि से बचाने में त्रुटि न करे।

वार्षिक यज्ञ

उद्भिद् जगत् विषयक वार्षिक यज्ञ के दिनों में जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों मे प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता को उद्भिद् यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के द्वारा, उनके पाठ और उनपर विचार करने से पहले, यज्ञ साधन कर्ता को उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उच्च ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को उद्भिद् जगत के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उनके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों मे उद्भिद् यज्ञ विषयक आदेशो के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता के हृदय मे जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए।

६—इन दिनों में उपरोक्त शुभ संकल्पों में से जो २ शुभ संकल्प पूरे हो सकते हों, उन्हें यज्ञ साधन कर्ता को इन्हीं दिनों में पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

७—इन दिनों मे अपने घर के पौदों की विशेष रूप से सेवा करनी चाहिए, और यथा आवश्यक और यथा सामर्थ्य अपने पुष्प दायक वृक्षों की सख्या को बढाना चाहिए।

८—इन दिनों में अपनी पुष्प वाटिका अथवा अपने उद्यान आदि की विशेष रूप से सेवा करनी चाहिए।

९—इन दिनों में उद्भिद् जगत् विषयक पुस्तकों वा निबन्धों वा वचनों आदि का पाठ करना चाहिए।

१०—इन दिनों में अधिकारी जनों को अपनी योग्यता के अनुसार ऐसी छवियों और पुस्तकों आदि का दान करना चाहिए, कि जिनके अवलोकन वा पाठ से उनके हृदयों में उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में कोई उच्च भाव जाग्रत वा उन्नत हो सकता हो।

११—इन दिनों में यथा सामर्थ्य किसी नए वृक्ष वा उद्यान आदि के लगाने का संकल्प करना चाहिए।

१२—इन दिनों में अपनी सामर्थ्य के अनुसार फूलों पत्तों और पौदों आदि के द्वारा अपने रहने और पूजा आदि के स्थानों को विशेष रूप से सुसज्जित करना चाहिए।

१३—इन दिनों में एक वा दूसरे प्रकार से फूलों, और फलों का शुभ भाव के साथ अधिक व्यवहार करना चाहिए।

१४—इन दिनों में यथा अवसर किसी उद्यान वा असाधारण वृक्षों का दर्शन करना चाहिए।

पुष्प पत्र व्रत*

१—व्रत के दिन से एक दिन पहले अपने घर के सब गमलों को धोकर और उन्हें रंग आदि के द्वारा अधिक रूप से सुशोभित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन से एक दिन पहले अपने साधन स्थान को परिष्कार करके उसे फूल पत्तों, फूलों के पौदों, उनकी छवियों और उद्भिद् जगत के सम्बन्ध मे अच्छी २ उक्तियों आदि के द्वारा सुसज्जित करना चाहिए।

* शेष दिन का साधन।

३—व्रत के दिन अपने घर के और स्थानों को भी फूल पत्तों और गमलों आदि के द्वारा अधिक रूप से सुसज्जित करना चाहिए।

४—व्रत के दिन स्नान करके उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए अपने २ उचित स्थान में बैठना चाहिए।

५—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत विषयक साधन करना चाहिए:—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्च्चन।

(२) देव स्तोत्र का उच्च स्वर के साथ गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आवश्यक आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण, अथवा उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के द्वारा प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना जो कुछ मोक्ष वा विकास विषयक हित साधन किया हो, उस पर चिन्तन, और इस यज्ञ के स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष में इस यज्ञ के सम्बन्ध मे अपने आपको और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और श्री देवगुरु भगवान् से प्रार्थना।

(८) महा वाक्य का उच्चारण* ।

---

*परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान मे "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

६—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन आहार करना चाहिए ।

७—व्रत के उपलक्ष्य में जहां कहीं सम्भव हो, उद्भिद् जगत् विषयक नाना प्रकार की वस्तुओं की एक प्रदर्शनी करनी चाहिए ।

८—व्रत के दिन आहार के अनन्तर किसी उचित समय में उद्भिद् जगत् सम्बन्धी हितकर लेखों का पाठ वा श्रवण करना चाहिए ।

९—व्रत के दिन एक वा दूसरे के पास अपने २ सद्भाव के प्रकाश में नए फल वा नई तरकारियां और फूल आदि भेजना चाहिए ।

१०—व्रत के दिन आहार से पहले आशीर्वाद प्रार्थना करके उद्भिद्-जगत्-प्रसूत कुछ अन्न और फलों आदि को दरिद्रों को दान करना चाहिए ।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

भृत्य स्वामी यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

भृत्य स्वामी यज्ञ

भृत्य स्वामी के सम्बन्ध में आदेश

भृत्य* के लिए

१. सम्बन्ध अनुभव

१—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के साथ अपना धर्म-मूलक शुभ सम्बन्ध अनुभव करे।

२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीचगति से मुक्त करने और मुक्त रखने और प्रत्येक उच्च गति दायक भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. सन्मान प्रदर्शन और आज्ञा पालन

३—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी और उसके अन्य सम्बन्धियों के प्रति, उनकी मर्य्यादा के अनुसार, उचित रूप से सन्मान प्रदर्शन करे।

४—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी की उन सब आज्ञाओं को भली भान्त पालन करे, कि जिन के पालन करने के लिए वह दायी वा बाध्य हो।

---

* भृत्य कई प्रकार के होते हैं, यथा—(१) किसी घर वा परिवार के नौकर, (२) किसी कारखाने वा दुकान के नौकर, (३) किसी राज्य वा गवर्नमेंट के नौकर, (४) किसी सोसाइटी वा समाज वा सस्था के नौकर, (५) कोई दैनिक नौकर अर्थात् दिहाडी पर काम करने वाले, इत्यादि। इस यज्ञ मे भृत्य के लिए जो आदेश दिए गए हैं, उनमे से जितने आदेश जिस २ प्रकार के भृत्यो के लिए ठीक बैठते हो, उतने २ आदेश उसी २ प्रकार के भृत्यो के लिए समझने चाहिए।

५—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने काम वा परिश्रम के लिए अपने स्वामी से कोई नियमित वेतन वा दैनिक पारिश्रमिक नियत करके, उसके बदले में उसके लिए पूर्ण मात्रा में काम वा परिश्रम करे।

६—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी की प्रत्येक आज्ञा को भली भान्त ध्यान देकर सुने।

७—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी की प्रत्येक आज्ञा को स्मरण रक्खे।

३. कर्त्तव्य कार्य

८—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के सम्बन्ध में अपने प्रत्येक कर्त्तव्य कार्य को **प्रीति वा प्रसन्नता** के साथ सम्पादन करे।

९—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के सम्बन्ध में अपने प्रत्येक कर्त्तव्य कार्य को, जहां तक सम्भव हो, **उत्तम रूप** से सम्पादन करे।

१०—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने प्रत्येक कर्त्तव्य कार्य को, जहां तक सम्भव हो, **ठीक समय** में सम्पादन करे।

४. अपराध स्वीकृति और क्षमा प्रार्थना

११—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के सम्बन्ध में अपनी किसी सच्ची अवज्ञा वा अपने किसी सच्चे अपराध के विषय में सूचित किए जाने पर उसे विनय पूर्वक स्वीकार करे।

१२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने द्वारा अपने स्वामी के सम्बन्ध में अज्ञान

वा भ्रम वशतः किसी सामान्य अनुचित क्रिया के हो जाने और उस से अवगत होने पर अपने स्वामी से उचित रूप से क्षमा प्रार्थना करे।

५. परिशोध

१३—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि यदि उसके द्वारा उसके स्वामी की किसी वस्तु वा उसके किसी कार्य को अनुचित हानि पहुंचे, तो वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसका उचित रूप से परिशोध करे।

१४—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि यदि उसके द्वारा उसके स्वामी को कोई अनुचित क्लेश पहुंचे, तो उसके विषय में आवश्यक परिशोध करके उसके सम्बन्ध में अपने आत्मिक विकार को दूर करने की चेष्टा करे।

६. अवकाश और विदाई

१५—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी से स्वीकृति लेकर अपने किसी कर्त्तव्य कार्य से अवकाश लाभ करे।

१६—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अपने स्वामी को विधि पूर्वक सूचना देकर और उसकी अनुमति लेकर उसकी सेवा से अलग हो।

७. सुरक्षा

१७—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि यदि उसके स्वामी के सम्बन्ध में उसके किसी कर्त्तव्य कार्य में किसी प्रकार का कोई विघ्न उत्पन्न हो, तो वह उसके विषय में जहां तक शीघ्र से शीघ्र सम्भव हो, अपने स्वामी को सूचित करे।

१८—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि यदि उस के सन्मुख उसके स्वामी के किसी सच्चरित्र

पर कोई आक्षेप करे, तो वह किसी उचित विधि से उनसे उसे सुरक्षित करने की चेष्टा करे।

८. विश्वस्तता

१६—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के सम्बन्ध में अपने आप को सदा विश्वास के योग्य प्रमाणित करे।

६. सद्भाव की उन्नति

२०—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के जिस किसी सद्‌गुण को उपलब्ध कर सकता हो, उसे बार २ स्मरण करके और उसे औरों के सन्मुख वर्णन करके उसके प्रति अपने सद्भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

१०. कृतज्ञता

२१—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि अपने स्वामी से किसी प्रकार की विशेष सहाय, शुश्रूषा वा सेवा के पाने पर उसके लिए उसका कृतज्ञ वा उपकृत अनुभव करे।

११. सहाय और सेवा

२२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विशेष आवश्यकता के समय अपने स्वामी के लिए यथासाध्य नियत काम से भी अधिक काम करे।

२३—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के विपद्‌ग्रस्त होने पर, जहां तक उसके लिए सम्भव और उचित हो, उसकी सहाय करे।

२४—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के रोग वा पीड़ा-ग्रस्त होने पर, जहां तक उसके लिए सम्भव हो, उचित रूप से उसकी सहाय वा शुश्रूषा करे।

२५—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार उसके किसी सम्बन्धी वा अन्य जन के किसी रोग वा विपद के समय, अपनी योग्यता के अनुसार शुश्रूषा वा सहाय करे।

२६—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के पूछने पर, वा अपनी ओर से उचित समझकर, अपनी योग्यता के अनुसार उसे एक वा दूसरे प्रकार का सत् परामर्श दे।

२७—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने और अनुकूल अवस्था मिलने पर, अपने स्वामी वा उसके किसी आश्रित सम्बन्धी को किसी अपराध वा पाप-मूलक क्रिया से बचाने वा उस में किसी उच्च भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की यथा साध्य चेष्टा करे।

१२. मंगल कामना

२८—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर अपने स्वामी और उसके कुछ विशेष २ आश्रित सम्बन्धियों के लिए मंगल कामना करे।

वर्जित कर्म

१—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी अथवा उसके सम्बन्धियों वा उसके मित्रों के प्रति अपमान सूचक कोई क्रिया न करे।

२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के प्रत्येक कार्य को उचित समय में और उत्तम रूप से पूरा करने में यथा साध्य कभी त्रुटि न करे।

३—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी की किसी वस्तु को अपनी असावधानता से कभी हानि न पहुंचावे।

४—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी की किसी वस्तु की चोरी न करे।

५—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के जिस २ अधिकार की रक्षा करने के लिए नियुक्त हुआ हो, उसके सम्बन्ध में स्वामी के लाभ से अपने लाभ को बढकर न समझे।

६—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के सम्बन्ध में प्रत्येक उचित कार्य के करने में स्वामी की रुचि पर अपनी रुचि को श्रेष्ठता न दे।

७—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी वा उसके किसी समीपी सम्बन्धी के सम्बन्ध में कोई अपराध करके उसके छिपाने के लिए कोई चेष्टा न करे।

८—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी वा उसके किसी समीपी सम्बन्धी की किसी उचित और गोपनीय बात को किसी और पर प्रगट करके विश्वासघाती न बने।

९—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी वासना की अनुचित तृप्ति के वशीभूत होकर अपने स्वामी वा उसके किसी समीपी सम्बन्धी के शरीर, प्राण, धन सम्पत्ति और मान आदि को कोई हानि न पहुंचावे।

१०—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह प्रतिशोध भाव के वशीभूत होकर, अपने स्वामी

वा उसके किसी समीपी सम्बन्धी के शरीर, प्राण, धन और मान आदि को कोई अनुचित हानि न पहुंचावे।

११—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी को किसी अपराध वा पाप-मूलक कार्य के लिए जान बूझकर कभी प्रेरित न करे।

१२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्वामी के किसी अपराध वा पाप-मूलक कार्य में जान बूझ कर कभी सहाय न करे।

वार्षिक यज्ञ

भृत्य स्वामी विषयक वार्षिक यज्ञ के दिनों में भृत्य के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं :—

१—इन दिनों में प्रत्येक भृत्य को यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले प्रत्येक भृत्य को उनके द्वारा अपने स्वामी के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उच्च ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—प्रत्येक भृत्य ने श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उनके हित को इन दिनों अपने सन्मुख लाकर, उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक भृत्य को अपने स्वामी के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों में प्रत्येक भृत्य को अपने स्वामी के सद्गुणों पर विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए।

६—इन दिनों में प्रत्येक भृत्य को अपने स्वामी की किसी हीनता वा नीचता या उसके किसी अभाव के विषय में अवगति लाभ करने और उसके दूर करने की सामर्थ्य रखने पर, उसके दूर करने के निमित्त आवश्यक उपाय सोचना और अवलम्बन करना चाहिए।

७—इन दिनों में प्रत्येक भृत्य को अपने स्वामी के प्रति अपने सद्भाव को विशेष रूप से बढाने के निमित्त चेष्टा करनी चाहिए।

८—इन दिनों मे प्रत्येक भृत्य को यथा साध्य अपने स्वामी के साथ विशेष रूप से सदालाप अथवा पत्र व्यवहार करना चाहिए।

९—इन दिनों में प्रत्येक भृत्य को अपने स्वामी की हितकर जीवन कथाओं का वर्णन वा पाठ वा श्रवण वा यथा साध्य उन्हें लिपिबद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए।

१०—इन दिनों मे प्रत्येक भृत्य को अपने इस लोक वा परलोक वासी स्वामी वा स्वामियों के लिए विशेष रूप से मंगल कामना करनी चाहिए।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

भृत्य स्वामी यज्ञ

स्वामी* के लिए अपने भृत्य के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध अनुभव

१—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह भृत्य को अपने लिए एक आवश्यक और सेवाकारी अंग जान कर उसके साथ अपना धर्म-मूलक गाढ़ सम्बन्ध अनुभव करे।

२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य की किसी विशेष आवश्यकता के समय में, अपनी सामर्थ्य के अनुसार, उसकी कोई विशेष सहाय वा सेवा करना अपना उच्च अधिकार अनुभव करे।

३—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य के सम्बन्ध में अपने आपको प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने और मुक्त रखने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

४—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने सम्बन्ध को अपने भृत्य के लिए सब प्रकार से हितकर बनाने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. सन्मान और आदर प्रदर्शन

५—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए

* स्वामी कई प्रकार के होते हैं यथा–(१) किसी घर वा परिवार का स्वामी, (२) किसी दुकान वा कारखाने का एक वा उसके कई स्वामी, (३) किसी दफ्तर का स्वामी, (४) किसी शासन विभाग का स्वामी, (५) किसी सोसाइटी वा समाज का स्वामी, (६) किसी संस्था का स्वामी; इत्यादि। इस यज्ञ में जितने आदेश जिस २ प्रकार के स्वामी के लिए ठीक बैठते हों, उतने आदेश उस २ प्रकार के स्वामी के लिए समझने चाहिए।

आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य के प्रति उसके पद और उसकी अवस्था आदि के अनुसार आवश्यक सन्मान प्रदर्शन करे।

६—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य के किसी उचित सुख वा लाभ के विषय में अवगत होने पर प्रसन्न हो, और यथा अवसर अपनी ऐसी प्रसन्नता का उचित रूप से प्रकाश करे।

७—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य की ओर से किसी असाधारण सेवा के पाने पर, उसकी प्रशंसा करके वा उसे कोई उचित पुरस्कार देकर अपने आदर का प्रकाश करे।

३. विश्वस्तता

८—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य को किसी विषय में वहीं तक भरोसे के योग्य समझे, जहां तक यथेष्ट परीक्षा के अनन्तर उसने उस विषय मे अपने आपको विश्वास के योग्य प्रमाणित किया हो।

९—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य की प्रत्येक ऐसी वस्तु की, जो उसने उसकी रक्षा में रक्खी हो, पूर्ण रूप से रक्षा करे, और उसके मांगने पर उसे उचित समय में दे-दे।

४. आज्ञा और कार्य

१०—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य को नासमझी के भ्रम से बचाने के लिये, जहां तक सम्भव हो, स्पष्ट रूप से और भली भान्त समझा कर आज्ञा दे।

११—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विशेष कारण के भिन्न अपने भृत्य को

केवल उन्हीं कामों की आज्ञा दे, कि जिन के लिए वह नियुक्त किया गया हो।

१२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विशेष कारण के भिन्न अपने भृत्य से उतना ही काम ले, जितना काम करने का वह दायी हो, अथवा जितना काम करना उसके लिए यथेष्ट और आवश्यक हो।

१३—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विशेष कारण के भिन्न अपने भृत्य से निर्दिष्ट समय में केवल निर्दिष्ट काम ले।

५. वेतन वा पारिश्रमिक

१४—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, निर्दिष्ट अथवा ठीक समय में ही अपने भृत्य को उसका वेतन वा पारिश्रमिक प्रदान करे।

६. अवकाश वा छुट्टी

१५—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य को उसके आवश्यक कृत्यों के पूर्ण करने के लिए आवश्यक अवकाश दे।

१६—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी विविध आवश्यकताओं के पूरा करने के निमित्त साधारणतः सप्ताह में एक दिन, वा उसके किसी अंश की, और किसी विशेष अवसर पर विशेप छुट्टी दे।

७. सहाय और सेवा

१७—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य की किसी शारीरिक पीड़ा वा विपदादि के समय अपनी योग्यता के अनुसार उसकी आवश्यक सहाय वा रक्षा करे।

१८—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने विश्वासी और पुराने सेवाकारी भृत्य वा उसके सम्बन्धियों का कोई विशेष उपकार करे।

१९—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर अपने भृत्य के आत्मिक हित के लिए कोई उचित प्रयत्न करे।

८. अपराध और दण्ड

२०—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य की ओर से अज्ञानता के कारण किसी अपराध के होने पर, जहां तक हो, उसे समझा देना, वा यथा आवश्यक कुछ तिरस्कार कर देना ही यथेष्ट दण्ड समझे।

२१—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि यदि उसका भृत्य जान बूझकर भी उसके सम्वन्ध में कोई अपराध करे वा उसे हानि पहुंचावे, तो भी उसके अपराध और हानि के अनुसार उसे केवल विधेय और उचित दण्ड ही दे।

२२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य की छोटी २ अवज्ञाओं को, जहां तक हो, क्षमा करे।

९. परिशोध

२३—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य के सम्बन्ध में अपनी किसी अनुचित क्रिया वा अपने किसी अपराध के विषय में अवगत होने वा वोध लाभ करने पर, उसके लिए उचित परिशोध करके उसके साथ अपने सम्वन्ध को शुद्ध करे।

१०. मंगल कामना

२४—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए

आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर अपने भृत्य वा भृत्यों के लिए मंगल कामना का साधन करे ।

वर्जित कर्म

१—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विशेष कारण के भिन्न, असमय में अपने भृत्य से कोई काम न ले ।

२—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विशेष कारण के भिन्न अपने भृत्य से उस की योग्यता से बढकर कोई काम न ले ।

३—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य को किसी अनुचित वा अपराध वा पाप-मूलक कार्य के लिए कभी आज्ञा न दे ।

४—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य के उचित वेतन वा पारिश्रमिक को उचित समय में देने से विमुख न हो ।

५—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य को उसकी अपनी वा उसके परिवार आदि की किसी विशेष आवश्यकता के पूरा करने के निमित्त, उचित वा विधेय छुट्टी के देने में त्रुटि न करे ।

६—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विषय में परीक्षा के बिना अपने भृत्य पर आवश्यकता से बढ़कर विश्वास न करे ।

७—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने भृत्य के प्रति अपनी योग्यता के अनुसार जो कुछ भलाई कर सकता हो, उसमें त्रुटि न करे ।

८—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विशेष कारण के भिन्न अपने किसी भृत्य को उचित अथवा विधेय सूचना देने के बिना अपनी सेवा से अलग न करे।

९—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी भृत्य की किसी उचित स्वतंत्रता वा उसके किसी उचित अधिकार में किसी प्रकार से विघ्नकारी न बने।

१०—भृत्य स्वामी यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी वासना वा उत्तेजना आदि की अनुचित तृप्ति के लिए अपने भृत्य के शरीर, प्राण, धन और मान आदि को कोई हानि न पहुंचावे।

वार्षिक यज्ञ

भृत्य स्वामी विषयक वार्षिक यज्ञ के दिनों में स्वामी के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में प्रत्येक स्वामी को यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले प्रत्येक स्वामी को उनके द्वारा अपने भृत्य के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उच्च ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—प्रत्येक यज्ञ कर्ता स्वामी ने श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर पूर्वोक्त आदेशों मे से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उनके हित को इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक स्वामी को अपने भृत्य के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग

करने के भिन्न, यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों में प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता स्वामी को अपने प्रत्येक भृत्य के सद्गुणों पर विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए।

६—इन दिनों में प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता स्वामी को अपने प्रत्येक भृत्य की किसी हीनता वा नीचता, वा उसके किसी अभाव के विषय में अवगति लाभ करने और उसके दूर करने की सामर्थ्य रखने पर, उसके दूर करने के निमित्त आवश्यक उपाय सोचना और अवलम्बन करना चाहिए।

७—इन दिनों में प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता स्वामी को अपने प्रत्येक भृत्य के प्रति अपने सद्भाव को विशेष रूप से बढ़ाने के निमित्त चेष्टा करनी चाहिए।

८—इन दिनों में प्रत्येक यज्ञ साधन कर्ता स्वामी को यथासाध्य अपने प्रत्येक भृत्य के साथ विशेष रूप से सदालाप अथवा पत्र व्यवहार करना चाहिए।

९—इन दिनों में यथा सम्भव वा यथा रुचि प्रत्येक स्वामी को अपने किसी विशेष २ भृत्य की हितकर जीवन कथाओं वा उसके जीवन चरित को लिपिबद्ध करना चाहिए।

१०—इन दिनों में प्रत्येक स्वामी को अपने इस लोक वा परलोक वासी भृत्य वा भृत्यों के लिए विशेष रूप से मंगल कामना करनी चाहिए।

भृत्य स्वामी व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को साधन से पहले परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन, जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रात काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए ।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार सम्मिलित साधन करना चाहिए:—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्च्चन ।

(२) देव स्तोत्र का उच्च स्वर के साथ गान ।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम ।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना ।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आवश्यक आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण अथवा भृत्य स्वामी के सम्बन्ध में कोई उपदेश ।

(६) इस यज्ञ के द्वारा प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना जो कुछ मोक्ष वा विकास विषयक हित साधन किया हो, उस पर चिन्तन और यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश ।

(७) आगामी वर्ष में परस्पर के सम्बन्ध को और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना ।

(८) महा वाक्य* का उच्चारण.—
ओं उच्च गति, उच्च गति,
एकता, एकता, परम एकता ।

---

* परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है ।

५—व्रत के दिन साधारण दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन खाना चाहिए ।

स्वामी और उसके भृत्य वा भृत्यों के लिए परस्पर मिलकर साधन करने की विधि

१—भृत्य स्वामी यज्ञ कर्ता एक दूसरे का पुष्पहार के द्वारा अर्च्चन करे ।

२—भृत्य स्वामी यज्ञ कर्ता एक दूसरे को कोई न कोई वस्तु उपहार दे ।

३—भृत्य स्वामी यज्ञ कर्ता यज्ञ के सम्बन्ध में किसी गीत का मिलकर गान करे ।

४—भृत्य स्वामी यज्ञ कर्ता एक दूसरे के सम्वन्ध में अपने २ भावों का प्रकाश करे ।

५—भृत्य स्वामी यज्ञ कर्ता महा वाक्य* का उच्चारण करके साधन समाप्त करे ।
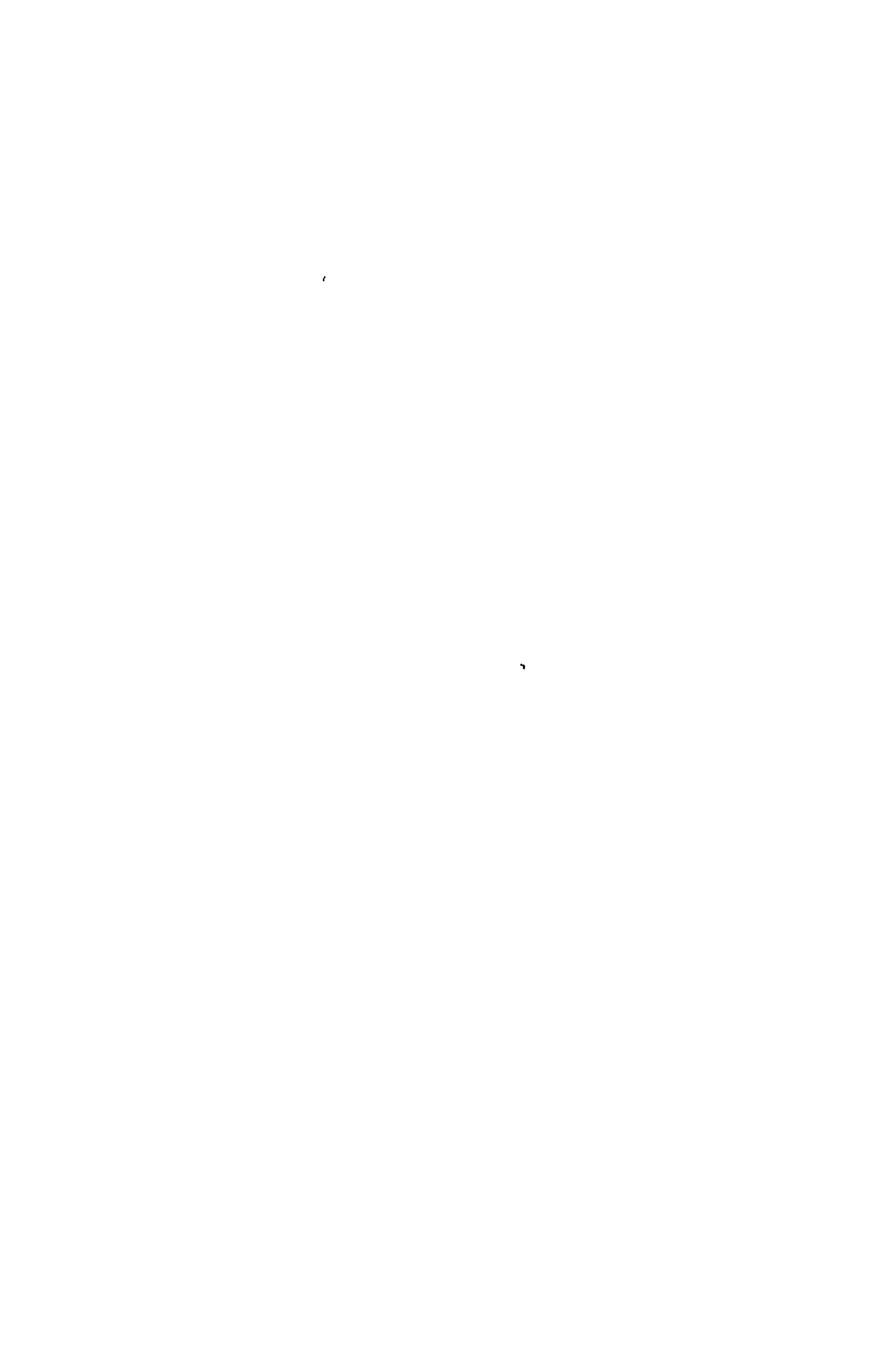
मनुष्य जगत् सम्बन्धी

स्ववंश यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

स्ववंश यज्ञ

१. सम्बन्ध बोध

१—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक पुरुष और स्ववंश यज्ञ साधन करने वाली प्रत्येक अविवाहित स्त्री अपने पिता से ऊपर के सब वंशीय जनों और अपने ताया, ताई, चाचा, चाची, भाई और भावजा और उन की प्रत्येक नर और अविवाहित नारी सन्तान के साथ अपने सम्बन्ध को अनुभव करता वा करती हो।

२—स्ववंश यज्ञ साधन करने वाली प्रत्येक विवाहित नारी अपने पति के पिता और उन से ऊपर के सब वंशीय जनों और अपने पति के ताया, ताई, चाचा, चाची, भाई और भावजा और उन की प्रत्येक नर और अविवाहित नारी सन्तान के साथ अपने सम्बन्ध को अनुभव करती हो।

२. अवगति

३—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंश और वंशीय जनों के विषय में मोटी २ बातों के भिन्न अपने वंश की शिक्षा, प्रथा, रीति, नीति और उस के आचार और व्यवहार आदि के विषय में जहां तक सम्भव हो, सच्ची अवगति लाभ करे।

३. सन्मान भाव

४—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उस के वंश के जिन २ जनों ने अपने २ आत्मा मे किसी प्रकार के विशेष सद्गुणों की वर्तमानता का परिचय दिया हो, वा अपने किसी विशेष परोपकार विषयक कर्म के द्वारा अपने वंश के गौरव को वढाया हो, उन्हें जाने और उनके प्रति अपने हृदय में सन्मान भाव अनुभव करे।

४. कृतज्ञ भाव

५—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंश के ऐसे जनों के प्रति अपने हृदय में कृतज्ञ भाव अनुभव करे, कि जिन के द्वारा उस का अपना कोई विशेष हित हुआ हो।

५. स्मृति रक्षा

६—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर अपने वंश के किसी सद्गुण के विचार से विख्यात जन की स्मृति रक्षा और अन्य जनों में उसके उस गुण की महिमा के प्रचार के लिए उसका जीवन-चरित लिखे और प्रकाशित करे।

७—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उस के वंश के जिस किसी सम्बन्धी की उचित रूप से स्मृति रक्षा की आवश्यकता हो, उस के लिए वह जब और जो कुछ सहाय वा सेवा कर सकता हो, वह सहाय और सेवा करे।

६. साधारण सहाय, सेवा और दान

८—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह सामर्थ्य रखने पर अपने वंश के किसी अनाथ लड़के वा लड़की को अपने घर में आश्रय दे, और उसकी सब प्रकार से उचित रक्षा और पालना करे, अथवा उन में से जिस किसी की जो कुछ कोई और सहाय कर सकता हो, वह सहाय करे।

९—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह सामर्थ्य रखने पर अपने वंश की किसी असहाय वा निराश्रित विधवा को उस के आकांक्षी होने पर अपने घर में आश्रय दे, और उसकी जिस २ प्रकार से **न्याय मूलक** सहाय कर सकता हो, वह सहाय, और उसकी स्त्री सम्बन्धी **पवित्रता** की भली भान्त रक्षा करे।

१०—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह सामर्थ्य रखने पर अपने वंश के ऐसे जनों के हित के लिए, कि जो एक

वा दूसरे कारण से अपने भरण पोषण के अयोग्य हों, कोई संस्था स्थापन करे, अथवा किसी ऐसे शुभ काम के लिए जो कुछ सहाय कर सकता हो, वह करे।

११—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंश की किसी पतनकारी वा बुरी प्रथा के दूर करने के लिए जहां तक सम्भव हो, चेष्टा करे।

१२—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उस ने अपने वंश गत जिस किसी सम्बन्धी से कोई विशेष सहाय वा सेवा पाई हो, उसके प्रति जहां तक सम्भव हो, एक वा दूसरे प्रकार से सहायक वा सेवाकारी बने।

१३—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह सामर्थ्य रखने पर अपने वंश गत जनों की मानसिक उन्नति वा उस में सहाय होने के लिए कोई छात्र निवास स्थापन करे, वा छात्र वृत्तियां वा पारितोषिक वा पदक आदि दान करे।

१४—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसे अपने माता पिता के भिन्न और जिस किसी वंशीय सम्बन्धी से कोई सम्पत्ति प्राप्त हुई हो, उस में से कम से कम आधी सम्पत्ति आत्माओं के सत्य मोक्ष और विकास के कार्य के लिए अर्पण करे।

७. आत्मिक परिवर्तन

१५—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंशीय जनों मे से जिन २ जनों तक देवात्मा के देव प्रभावों को पहुंचाकर उनके आत्माओं के मोक्ष और विकास के पथ में जहां तक सहाय वा सेवाकारी बन सकता हो, वहां तक सहाय वा सेवाकारी बने।

८. मंगल कामना

१६—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह शुभ कामना विषयक सात्विक भाव रखने पर अपने वंशीय जनों मे

देवात्मा के देव प्रभावों के पहुंचाने के द्वारा सत्य मोक्ष और विकास विषयक आत्मिक परिवर्त्तन के उत्पन्न और उसके भिन्न किसी और विशेष अभाव के दूर होने के निमित्त मंगल कामनाएं करे।

वर्जित कर्म

१—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंशीय जनों का पक्षपाती बन कर उनके वा उन में से किसी भी जन के लाभ के लिए किसी और वंश वा समाज वा राज्य वा अन्य जनों के उचित लाभ को अपनी किसी क्रिया के द्वारा कोई हानि न पहुंचावे।

२—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंश का पक्षपाती बनकर अपने वंश की किसी मिथ्या शिक्षा वा बुरी वा हानिकारक रीति वा प्रथा वा उसके किसी व्यवहार वा आचार की जान बूझकर कोई प्रशंसा वा पोषकता न करे।

३—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंश के किसी जन का साथी वा मित्र होने पर उसका पक्षपाती बनकर उसके लिए किसी और के विरुद्ध कोई मिथ्या साक्षी न दे।

४—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी क्रिया के द्वारा, अपने वंश के कुछ लोगों में अपने ही वंश के कुछ और लोगों वा अपने वंश से बाहर के जनों के प्रति किसी घृणा वा द्वेष भाव को उत्पन्न वा उन्नत न करे।

५—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी वंशीय जन से किसी धर्म वा राजनैतिक वा किसी अन्य विषय में मत भेद रखने पर वा उसकी किसी क्रिया को ठीक न समझने पर उसकी उचित स्वाधीनता में कोई विघ्न वा बाधा उत्पन्न वा उसे किसी प्रकार से उत्पीड़ित न करे। और यदि वह उस का कोई उपकारी सम्बन्धी हो, तो वह उस के प्रति अपनी कृतज्ञता और सन्मान विषयक किसी उचित क्रिया के साधन में कोई त्रुटि न करे।

६—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंश के किसी साधारण हितकर काम को अपनी किसी क्रिया के द्वारा कोई हानि न पहुंचावे।

७—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन और सम्पत्ति का लालसी बनकर उस की प्राप्ति के लिए अपने किसी वंशीय सम्बन्धी के प्रति किसी प्रकार का अन्याय वा पाप न करे।

८—स्ववंश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वंशीय जनों से डरकर उन की किसी भी अनुचित आकांक्षा वा क्रिया का जान बूझकर कभी साथ न दे।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में यज्ञ कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को स्ववंश यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ वा श्रवण और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता को अपने वंशीय जनों के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उन की देव ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—यज्ञ साधन कर्ता ने श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर पूर्वोक्त आदेशों से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने वंशीय जनों के सम्बन्ध मे अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय मे बोध प्राप्त करने पर उस के दूर होने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने

की प्रतिज्ञा करने के भिन्न श्री देवगुरु भगवान् से वल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों में स्ववंश यज्ञ विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ कर्ता के हृदय में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए।

६—उपरोक्त शुभ संकल्पों में से जो २ शुभ संकल्प यज्ञ साधन कर्ता इन्हीं दिनों में आरम्भ वा पूरे कर सकता हो, उन्हें इन्हीं दिनों में आरम्भ वा पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

७—इन दिनो में अपने वंश की अवस्था पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

८—इन दिनों मे स्ववंश सम्बन्धी एक वा दूसरे प्रकार के इतिहास वा लेख का पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

९—इन दिनों में अपने वंश के परोपकारी और प्रभावशाली स्त्री पुरुषों की जीवन कथाओं का पाठ अथवा श्रवण और यदि उन की कोई समाधियां वर्तमान हों, तो उन की यात्रा और यदि उन की कोई छवियां वर्तमान हों, तो उन छवियों का दर्शन करना चाहिए।

१०—इन दिनों में सात्विक शुभ कामना का भाव रखने पर अपने वंश के लिए विशेष रूप से मंगल कामना करनी चाहिए।

स्ववंश व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को पहले से परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रातःकाल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहनकर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का साधन करना चाहिए:—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छबि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उन का अर्च्चन ।

(२) देव स्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित पाठ वा गान ।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम ।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना ।

(५) स्ववंश यज्ञ सम्बन्धी आदेशों-का धीरे २ ध्यान पूर्वक पाठ वा श्रवण अथवा इस यज्ञ के सम्बन्ध में कोई उपदेश ।

(६) इस यज्ञ के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपने मोक्ष वा विकास के सम्बन्ध में जो २ कुछ शुभ लाभ किया हो, उस पर चिन्तन, और यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश ।

(७) आगामी वर्ष में स्ववंशीय जनों के सम्बन्ध में अपने आपको और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना ।

(८) महा वाक्य* का उच्चारण :—

ओ उच्च गति, उच्च गति,
एकता, एकता, परम एकता,

५—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन बनवाकर आहार करना चाहिए ।

६—व्रत के दिन जहां २ सम्भव हो, एक २ वंश के सब व्रत साधन कर्त्ताओं को एक ही स्थान में मिलकर भोजन करना चाहिए ।

---

*परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है ।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

स्वदेश यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

स्वदेश यज्ञ

स्वदेश और स्वदेश वासियों के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश और अपने देश वासियों के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध अनुभव करे।

२—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों के सम्बन्ध में अपने आपको प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने और मुक्त रखने, और प्रत्येक उच्च गति दायक भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

३—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पृथिवी के अन्य सब देशों की अपेक्षा अपने देश के साथ अपना अधिक सम्बन्ध अनुभव करे।

४—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश की अपेक्षा अपने प्रदेश, प्रदेश की अपेक्षा उपप्रदेश, उपप्रदेश की अपेक्षा अपने नगर वा ग्राम के साथ क्रम २ से अपना अधिक सम्बन्ध अनुभव करे।

५—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों में शान्ति की रक्षा और उनकी कई प्रकार की उन्नति के लिए शासन अथवा राज्य विषयक आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

६—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों में शान्ति की रक्षा और उनकी नाना प्रकार की उन्नति के लिए समय २ में शासन प्रणाली आदि में उन्नति-मूलक परिवर्तन की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

७—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश की धन, साहित्य, विज्ञान, साधारण विद्या, कला कौशल, वाणिज्य, शिल्प, स्वास्थ्य, और नीति आदि विषयक सब प्रकार की उन्नति के लिए आकांक्षा अनुभव करे।

८—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों के नाना प्रकार के कष्टों और अभावों को यथासाध्य दूर करने के निमित्त अपने हृदय में आकांक्षा अनुभव करे।

२. स्वदेश ज्ञान

९—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश की सब प्रकार की विगत और वर्तमान अवस्था के विषय में ज्ञान लाभ करके उसके साथ अपने हार्दिक सम्बन्ध को उन्नत करे।

१०—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के दर्शन और उसके विविध स्थानों में भ्रमण आदि के द्वारा उसके विषय में ज्ञान लाभ करके, उसके साथ अपने हार्दिक सम्बन्ध को उन्नत करे।

११—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश की विविध प्रकार की हितकर वस्तुओं के विषय में ज्ञान लाभ करके उसके साथ अपने हार्दिक सम्बन्ध को उन्नत करे।

१२—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश की शासन प्रणाली के विषय में, जहां तक उसकी अवस्था के अनुसार सम्भव हो, ज्ञान लाभ करके उसके साथ अपने हार्दिक सम्बन्ध को उन्नत करे।

३. सन्मान प्रदर्शन

१३—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश के शासन और प्रबन्ध विषयक उचित नियमों के प्रति उचित रूप से सन्मान प्रदर्शन करे।

१४—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश के शासन कर्ता कर्मचारियों के प्रति उनके पद के अनुसार उचित रूप से सन्मान प्रदर्शन करे।

४. सहाय और सेवा

१५—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश के सुशासन के लिए **कर** आदि देने के द्वारा **राजकोष** की उचित रूप से सहाय करे।

१६—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश की प्रत्येक जाति और उसके प्रत्येक दल और सम्प्रदाय आदि के मनुष्यों में, जहां तक सम्भव हो, परस्पर मेल जोल और सद्भाव की रक्षा वा उन्नति में यथासाध्य सहायक बने।

१७—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे यत्न में कि जो उसके देश की शासन-प्रणाली को लोगों के लिए अधिकांश रूप में कल्याणकारी और उनकी योग्यता के अनुकूल बनाने के निमित्त हो, **उचित और विधेय** रूप से यथासाध्य सहायक बने।

१८—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि जहां तक सम्भव हो, वह **स्वदेशीय वस्तुओं** का व्यवहार करके अपने देश वासियों के उचित कल्याण में सहायक बने।

१९—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों में सुशासन और शान्ति की रक्षा और अराजकता के मिटाने में यथासाध्य सब प्रकार से सहायक बने।

२०—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों के किसी साधारण अभाव के दूर करने में अपनी योग्यता के अनुसार सहाय करे।

२१—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह

अपने देश वासियों के प्रत्येक प्रकार के **साधारण हितकर** काम में अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक वा दूसरे प्रकार से कोई सहाय करे।

५. स्मृति रक्षा

२२—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश के ऐसे स्त्री और पुरुषों की **स्मृति रक्षा** के निमित्त, कि जिन्हों ने अपने प्रशंसनीय सुशासन के द्वारा उसके देश का कोई **विशेष कल्याण** किया हो, यथा सामर्थ्य यत्न वा सहाय करे।

२३—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश के ऐसे स्त्री और पुरुषों की **स्मृति रक्षा** के निमित्त कि जिन्हों ने उसके देश की शासन प्रणाली को अधिक उन्नत और कल्याणकारी बनाने के निमित्त, **कोई विशेष रूप से यत्न** किया हो, अपनी सामर्थ्य के अनुसार सहाय करे।

२४—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह ऐसे स्त्री पुरुषों की **स्मृति रक्षा** के निमित्त, कि जिन्हों ने अपने किसी असाधारण **शुभ कार्य** के द्वारा उसके **देश की उन्नति** में सहाय की हो, अपनी सामर्थ्य के अनुसार सहायक बने।

६. राजकर्म

२५—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह राजकर्मचारी होने पर अपने अधिकार के अनुसार अपने देश वासियों के उचित स्वत्वों की भली भान्त रक्षा करे।

२६—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह राजकर्मचारी होने पर अपने अधिकार और अपनी योग्यता के अनुसार अपने देश वासियों का प्रत्येक हित साधन करे।

२७—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह राजकर्मचारी होने पर अपने शासनकर्ताओं की उचित आज्ञा को भली भान्त पालन करे।

२८—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह राजकर्मचारी होने पर अपने शासनाधीन जनों पर राज्य विधि वा न्याय के अनुसार शासन करे।

७. परिशोध

२६—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश के सम्बन्ध में अपने किसी अपराध वा पाप के विषय में बोध लाभ करने पर उसके लिए उचित रूप से परिशोध करके अपने हृदय को उसके विकार से शुद्ध करे।

८. मंगल कामना

३०—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह बोध रखने पर अपने देश के किसी साधारण अहित की निवृत्ति और हित की उत्पत्ति वा उन्नति के लिए मंगल कामना करे।

वर्जित कर्म

१—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी देश वासी को अपनी किसी अनुचित क्रिया के द्वारा किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे।

२—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश की शासन प्रणाली और उसके इतिहास के विषय में, जहां तक सम्भव हो, अवगत होने से उदासीन न रहे।

३—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश में अराजकता लाने वाले जनों का कभी और किसी प्रकार सहायक न बने।

४—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों की किसी साधारण पीड़ा और विपद आदि के

समय अपनी अवस्था के अनुसार उचित और आवश्यक सहाय देने में त्रुटि न करे।

५—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों के किसी साधारण हितकर काम में जहां तक अपनी सामर्थ्य के अनुसार कोई उचित सहाय कर सकता हो, उससे उदासीन अथवा विमुख न रहे।

६—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश के किसी ऐसे दल में योग अथवा उसे किसी प्रकार की कोई सहाय न दे, कि जिसके द्वारा न्याय वा शासन प्रणाली के किसी कल्याणकारी नियम की जड़ कटती हो।

७—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश की भिन्न २ जातियों वा सम्प्रदायों आदि मे कोई अनुचित द्वेष और असद्भाव वर्द्धन न करे, और ऐसे कामों में किसी को किसी प्रकार की सहाय न दे।

८—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने देश वासियों के लाभ के लिए अन्य देश वासियों के किसी उचित और मुख्य लाभ को हानि न पहुंचावे।

९—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह राजकर्मचारी होने पर अपने शासनाधीन जनों के सम्बन्ध में राज्य विधि वा न्याय के विरुद्ध कोई आचरण न करे।

१०—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह राजकर्मचारी होने पर अपने शासन कर्ताओं की राज-प्रबन्ध-विषयक किसी उचित आज्ञा के पालन में त्रुटि न करे।

११—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह राजकर्मचारी होने पर जहां तक अपने उचित अधिकार के अनुसार

अपने देश वासियों की अन्याय और अत्याचार से रक्षा कर सकता हो, वहां तक उनकी रक्षा करने में त्रुटि न करे ।

१२—स्वदेश यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह राजकर्मचारी होने पर जहां तक अपने उचित अधिकार के अनुसार अपने देश वासियों के भले के लिए कोई काम कर सकता हो, उसमें त्रुटि न करे ।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में यज्ञ कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को स्वदेश यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए ।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले साधन कर्ता को उनके द्वारा अपने देश के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उनकी ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए ।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए ।

४—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को किसी स्वदेश वासी के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय मे बोध प्राप्त करने पर उसके दूर होने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए ।

५—इन दिनों में स्वदेश के सम्बन्ध मे जो २ शुभ संकल्प वा भाव साधन कर्ता के हृदय मे उत्पन्न हों, उनमें से जो २ संकल्प वा

भाव यज्ञ के दिनों में आरम्भ अथवा पूरे हो सकते हों, उन्हें उसे इन्हीं दिनों में आरम्भ अथवा पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

६—इन दिनों में अपने नगर और देश के इतिहास को पढना अथवा उसके विषय में कोई अवगति लाभ करने की चेष्टा करनी चाहिए।

७—इन दिनों में अपने देश की राजनैतिक अवस्था के विषय में अध्ययन अथवा विचार करना चाहिए।

८—इन दिनों में अपने देश के विशेष २ प्रशंसनीय और स्मरणीय शासन कर्ता स्त्री पुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ना अथवा लिखना अथवा सुनना और सुनाना चाहिए।

९—इन दिनों में अपने देश की एक वा दूसरी सची महिमा के विषय मे चिन्ता, कथा वार्ता और गीत आदि गान करना चाहिए।

१०—इन दिनों में यथा सामर्थ्य अपने देश के विशेष २ प्राकृतिक दृश्यों का दर्शन और विशेष २ हितकर वस्तु-उत्पादक स्थानों और दर्शनीय नगरों की यात्रा करनी चाहिए।

११—इन दिनों में यथा अवसर अपने देश की नाना प्रकार की खनिज और निर्म्मित वस्तुओं से भरपूर किसी प्रदर्शनी का दर्शन करना चाहिए।

१२—इन दिनों में अपने देश वासियों के किसी साधारण अभाव वा कष्ट आदि के दूर होने के निमित्त मंगल कामना करनी चाहिए।

स्वदेश व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को पहले से परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रात. काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का सम्मिलित साधन करना चाहिए—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उन का अर्च्चन।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण अथवा स्वदेश के सम्बन्ध में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना जो कुछ मोक्ष वा विकास विषयक शुभ साधन किया हो, उस पर चिन्तन और यज्ञ स्थापनकर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि उच्च भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष मे इस यज्ञ के सम्बन्ध में अपने आपको और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना।

(८) महावाक्य का उच्चारण —
ओं उच्चगति, उच्चगति,
एकता, एकता, परम एकता।*

५—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन आहार करना चाहिए।

६—व्रत के दिन अपने देश वासियों के कल्याण के लिए एक वा दूसरे प्रकार का दान करना चाहिए।

---

*परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोड़कर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

७—व्रत के दिन भोजन के अनन्तर किसी उचित समय में एक और सभा करनी चाहिए, कि जिसमें अपने देश के विशेष २ प्रशंसनीय स्थानों और पदार्थों आदि के विषय में कथन, श्रवण, वा गान करना चाहिए।

८—महा वाक्य* के उच्चारण के अनन्तर यह सभा विसर्जन करनी चाहिए।

* पिछले पृष्ठ पर नोट देखो

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

सेवक यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

सेवक यज्ञ

सेवकों के साथ सेवकों के सम्बन्ध में आदेश।

१. सम्बन्ध बोध

१—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज के सब सेवकों और सेवकाओं के साथ अपने घनिष्ट सम्बन्ध को भली भान्त अनुभव करे।

२—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह देवसमाज के सब सेवकों और सेवकाओं के सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीचगति से मुक्त करने और मुक्त रखने और उच्चगति दायक प्रत्येक भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की आवश्यकता को भलीभान्त अनुभव करे।

२. मेल मिलाप

३—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, नाना सेवकों के साथ परिचित होने, और उनके साथ हितकर बात चीत और पत्र व्यवहार करने के द्वारा मेल मिलाप के बढाने के लिए उचित रूप से चेष्टा करे।

४—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अपने किसी स्थानीय वा अन्य सेवक के किसी शुभ और आनन्दकारी अनुष्ठान में योग देकर उसके साथ अपने मेल मिलाप के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

३. श्रद्धा भाव

५—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है कि जिन सेवकों ने,

(१) श्री देवगुरु भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध के घनिष्ट करने में;

(२) साधारण लोगों में श्री देवगुरु भगवान् की महिमा और उनके प्रति श्रद्धा के फैलाने में;

(३) देवशास्त्र के अध्ययन और पांडित्य और प्रचार में;

(४) देवसमाज की किसी संस्था वा संस्थाओं के उन्नत करने में,

(५) देवसमाज के लिए अपनी किसी प्रकार की आत्मिक शक्तियों, अपने धन वा अपनी सम्पत्ति आदि के दान करने में;

(६) सेवकों और श्रद्धालुओं की संख्या के बढ़ाने में;

(७) अपने सहपंथी सेवकों को नीच गतियों से निकालने और उनमें किसी, उच्चगति के विकसित करने में;

(८) देवसमाज के साहित्य के बढाने में,

(९) सेवकों की स्त्रियों की किसी प्रकार की उन्नति में;

(१०) सेवकों के बच्चों की किसी प्रकार की भलाई में,

(११) सेवकों के शारीरिक स्वास्थ्य और बल की उन्नति में;

(१२) सेवकों की मानसिक शिक्षा की उन्नति में;

(१३) सेवकों की आर्थिक उन्नति में;

(१४) सेवकों के दु ख और विपद् में सहायक होने में।

(१५) सेवकों के आपस के विवाद के मिटाने अथवा उन में मेल मिलाप के बढाने में;

(१६) अपने किसी अपराध वा पाप विषयक परिशोध के करने में;

कोई अनुकरणीय दृष्टान्त दिखाया हो, वा कोई प्रशंसनीय विशेषता लाभ की हो, उनकी इन विशेपताओं के विपय मे चिन्तन,

विचार, कथन, और श्रवणादि के द्वारा उनके और उनके ऐसे गुणों के प्रति अपने भीतर श्रद्धा भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

४. सन्मान प्रदर्शन

६—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह प्रत्येक सेवक वा सेवका के पद के अनुसार उसके प्रति विधेय रूप से सन्मान प्रदर्शन करे।

५. अधिकार रक्षा

७—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह प्रत्येक सेवक वा सेवका के उचित अधिकारों की भली भान्त रक्षा करे।

६. अनमेल निवारण

८—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह किसी सेवक वा सेवका के साथ अनुचित अनमेल के उत्पन्न कर लेने पर, किसी उचित विधि के द्वारा, जहां तक शीघ्र सम्भव हो, उसके दूर करने की चेष्टा करे।

९—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह दो वा कई सेवकों में कोई अनमेल देखने वा उसके विषय में सूचित होने पर, जहां तक उसके लिए सम्भव हो, उन में उचित रूप से मेल करा देने की चेष्टा करे।

१०—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अपने प्रत्येक ऐसे विवाद वा झगडे को जो राज्य की अदालत से बाहर विधेय रूप से निवट सकता हो, अपने साथी सेवकों के द्वारा निर्णय कराए।

७. सहाय और सेवा

११—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह किसी सेवक वा सेवका वा उसकी पत्नी वा

उसके पति वा उसके माता पिता वा बच्चों के विपद् ग्रस्त होने पर, जहां तक सम्भव हो, अपनी योग्यता के अनुसार, सहाय करे।

१२—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह किसी सेवक वा सेवका वा उसके किसी समीपी सम्बन्धी के रोग वा पीड़ा ग्रस्त होने पर, जहां तक सम्भव हो, अपनी योग्यता के अनुसार, उसकी सहाय वा शुश्रूषा करे।

१३—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर, जहां तक सम्भव हो, किसी सेवक वा सेवका को किसी नीच गति से निकालने के लिए चेष्टा करे।

१४—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर, किसी सेवक वा सेवका में किसी उच्च गति दायक भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने के लिए चेष्टा करे।

१५—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर, किसी सेवक वा सेवका के किसी उचित कार्य में यथासाध्य सहायक बने।

८. मंगल कामना

१६—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह अपने विशेष रूप से परिचित और सम्बन्धी सेवकों और सेवकाओं के लिए मंगल कामना करे।

वर्जित कर्म

१. मेल मिलाप

१—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह किसी सेवक वा सेवका के साथ जान बूझकर कोई ऐसी अनुचित बात चीत वा ऐसा अनुचित वर्ताव न करे, कि जिस से उसके प्रति उस सेवक के मेल मिलाप वा सद्भाव को कोई हानि पहुंचे।

२—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह किसी सेवक के साथ कोई ऐसी अनुचित बात चीत वा ऐसा अनुचित वर्ताव न करे, कि जिस से उस सेवक के साथ किसी और सेवक के मेल मिलाप और सद्भाव को कोई हानि पहुंचे।

३—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह किसी और सेवक के साथ अपने वा किसी और के अनमेल को जानकर अपनी ओर से उसके बढ़ाने की कदापि चेष्टा न करे।

२. सन्मान प्रदर्शन

४—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह किसी सेवक वा सेवका के प्रति उसके पद के अनुसार सन्मान प्रदर्शन करने में त्रुटि न करे।

३. परस्पर विवाद

५—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर और आपस के झगड़ों को, जहां तक विधेय और सम्भव हो, किसी सेवक वा सेवका वा कई सेवक वा सेवकाओं के द्वारा निर्णय कराने के स्थान में किसी राज्य के विचारालय में निर्णय कराने के लिए न लेजाए।

४. सहाय और सेवा

६—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता और अवसर के अनुसार किसी सेवक वा सेवका को किसी प्रकार की हितकर शिक्षा अथवा परामर्श देने से विमुख न हो।

७—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह किसी सेवक वा सेवका की विपद वा पीड़ा आदि के समय अपनी योग्यता और अवसर के अनुसार, आवश्यक और उचित सहाय और सेवा करने से विमुख न हो।

८—सेवक यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता और अवसर के अनुसार, किसी सेवक वा सेवका को किसी प्रकार की उचित और आवश्यक सहाय देने से विमुख न हो।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में यज्ञ कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका को सेवक यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार से पहले यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका को अन्य सेवक वा सेवकाओं के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उनकी ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक वा सेवका ने पूर्वोक्त आदेशों मे से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक और सेवका को किसी अन्य सेवक वा सेवका के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों में सेवक यज्ञ विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता प्रत्येक सेवक वा सेवका

के हृदय में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें उसे अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए ।

६—इन दिनों में उपरोक्त शुभ संकल्पों में से जो २ संकल्प पूरे हो सकते हों, उन्हें यज्ञ साधन कर्ता को इन्हीं दिनों में पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए ।

७—इन दिनों में एक नगर वा ग्राम के सेवकों को दूसरे नगर वा ग्राम के सेवकों से, और एक ही नगर वा ग्राम के सेवकों को आपस में, जहां तक सम्भव हो, अधिक मिलना जुलना और अपने मेल मिलाप को बढाना चाहिए ।

८—इन दिनों में एक दूसरे के सद्गुणों वा अपने प्रति किसी के उपकारों वा किसी के सम्बन्ध में अपने किसी अपराध आदि को स्मरण करके उनके विषय में एक दूसरे के साथ विशेष रूप से पत्र व्यवहार करना चाहिए ।

९—इन दिनों में सेवक यज्ञ विषयक साधनों मे एक दूसरे की सहाय करनी चाहिए ।

१०—इन दिनों में विशेष २ प्रशंसनीय सेवकों की जीवनकथाओं का श्रद्धा पूर्वक पाठ वा उनका श्रवण करना चाहिए ।

११—इन दिनों मे योग्यता और अवकाश रखने पर किसी विशेष प्रशंसनीय सेवक वा सेवका का जीवन चरित लिखना चाहिए ।

१२—इन दिनों में विशेष २ और प्रशंसनीय सेवकों के लिए विशेष रूप से मंगल कामना करनी चाहिए ।

सेवक व्रत

१—देवसमाज परिषद की ओर से प्रकाशित कार्य प्रणाली के अनुसार विविध क्षेत्रों में सेवक व्रत विषयक सम्मिलित साधन होने चाहिएं ।

२—व्रत साधन के निमित्त जहां २ जो २ स्थान नियत हो, उसे पहले से भली प्रकार परिष्कार और सुसज्जित करना चाहिए।

३—जिस क्षेत्र के जिस स्थान में किसी सेवक वा सेवका के लिए योग देना उचित बोध हो, उसमें उसे प्रथम सभा से कुछ काल पहले ही पहुंच जाना चाहिए।

४—व्रत की सभाओं में अपने २ शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहनकर साधन के लिए बैठना चाहिए।

५—व्रत स्थान में एकत्रित यात्रियों के ठहरने और उनके आहार आदि का उचित रूप से प्रबन्ध होना चाहिए।

६—व्रत स्थान में एकत्रित यात्रियों की सेवा और शुश्रूषा का उचित रूप से प्रबन्ध होना चाहिए।

७—व्रत विषयक जिस २ कार्य के सम्पादन का जो २ जन दायी रक्खा गया हो, उसे अपने निर्दिष्ट काम को उत्तम रूप से सम्पादन करना चाहिए।

८—व्रत के अवसर पर जिस २ स्थान में जो २ श्रद्धालु जन, सेवक, वा सेवका बनने के अभिलाषी और योग्य हों, उन्हें सेवकी में ग्रहण करना चाहिए।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

स्वास्तित्व यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

स्वास्तित्व यज्ञ

स्वास्तित्व की रक्षा और उसके विकास के विषय में आदेश

पहला अध्याय

आत्मा के सम्बन्ध में

१. आवश्यक बोध

१—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने अस्तित्व के विषय में सब प्रकार के **आवश्यक ज्ञान** के लाभ करने के लिए भलीभान्त **आकांक्षा** अनुभव करे।

२—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अन्य प्रत्येक विद्या वा अवगति की अपेक्षा **अपने अस्तित्व** के विषय में **सत्य ज्ञान** लाभ करने की **आवश्यकता** और **श्रेष्ठता** को विशेष रूप से अनुभव करे।

३—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने अस्तित्व की **रक्षा** और उसके **विकास** के लिए अपने हृदय में भलीभान्त **आकांक्षा** अनुभव करे।

२. अपने आत्मा और शरीर के सम्बन्ध में ज्ञान

४—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भांत उपलब्ध करे, कि उसका सम्पूर्ण अस्तित्व जिन दो वस्तुओं से विशिष्ट है, उनमें से एक को **जीवनी शक्ति** और दूसरे को **भौतिक शरीर** कहते हैं।

५—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्णरूप से उपलब्ध करे, कि जो जीवनी शक्ति भौतिक

जगत् से विकसित होकर उद्भिद् और पशु जगत् के नाना आकारों में प्रकाशित हुई है, वही मनुष्य जगत् में पहुंचकर **आत्मा** कहलाती है।

६—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्णरूप से उपलब्ध करे, कि उसका **आत्मा** ही उसके शरीर का एक मात्र निर्म्माणकर्ता है, उसके भिन्न उसके शरीर का कोई और निर्म्माणकर्ता नहीं है।

७—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि उसका **आत्मा** ही उसके अस्तित्व में **मुख्य** पदार्थ है, और उसकी रक्षा से ही उसके अस्तित्व की रक्षा और उसके विनाश से उसके अस्तित्व का पूर्ण विनाश है।

८—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि यदि कोई आत्मा अपने लिए यथेष्ट रूप से शरीर निर्म्माण करने की शक्ति रखता हो, तो किसी विशेष दुर्घटना के भिन्न, अपने स्थूल शरीर के मृत्यु प्राप्त होने पर, वह उसी के सूक्ष्म परमाणुओं से और उसी के अनुरूप बहुत शीघ्र एक नया सूक्ष्म शरीर निर्म्माण और धारण करके पहले की न्याईं अपना जीवित अस्तित्व फिर लाभ कर लेता है।

३. विश्व के साथ अपने सम्बन्ध के विषय में ज्ञान

९—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि उसका अस्तित्व **सारे विश्व का एक अंश है**, और वह उसके सारे विभागों से **जुड़ा** हुआ है।

१०—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि जड़ और शक्ति के परस्पर सम्बन्ध के द्वारा विश्व के प्रत्येक विभाग और उसके प्रत्येक अंश में परिवर्तन हो रहा है।

११—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि उसका अस्तित्व विश्व का अंश और उसके विविध विभागों के साथ विविध सम्बन्ध सूत्रों से जुड़ा हुआ होकर परिवर्तित होने के बिना नहीं रह सकता, और वह लगातार परिवर्तित होता रहता है।

४. नीच और उच्च गतियों के सम्बन्ध में ज्ञान

१२—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि उसके आत्मा में जो **परिवर्तन** उसे पहले की अपेक्षा उच्च वा श्रेष्ठ बनाता हो, वह उसके लिए **उच्च गति दायक** और जो नीच वा अश्रेष्ठ बनाता हो, वह **नीच गति दायक** होता है।

१३—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि उसके आत्मा में जो परिवर्तन जितने अंश **नीच गतिदायक** होता है, वह उसके लिए **विनाशकारी** और जितने अंश **उच्च गति दायक** होता है, वह उसके लिए **विकासकारी** होता है।

५. अपने मुख्य लक्ष्य के सम्बन्ध में ज्ञान

१४—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि प्रत्येक नीचगति से **मोक्ष** और प्रत्येक उच्चगति के द्वारा अपने आत्मा का **विकास** साधन करना ही उसका **मुख्य लक्ष्य** है। और जहां तक विद्या, धन, सम्पद, मान, यश, पद, उपाधि, सन्तान, और सुख आदि उसके मुख्य लक्ष्य के अनुकूल वा उसमे सहायक हों, वहां तक ही उनकी प्राप्ति वा उनका सम्बन्ध उचित है, उस से अधिक नहीं।

६. आत्मिक मोक्ष और विकास के सम्बन्ध में ज्ञान

१५—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को पूर्ण रूप से

उपलब्ध करे, कि उसका आत्मा उच्च गति दायक नाना शक्तियों में विकसित होकर ही विनाशकारी नीच गतियों से मोक्ष और उच्च जीवन में विकास लाभ कर सकता है।

१६—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि उसका आत्मा अपने मुख्य लक्ष्य के विपरीत अपनी किसी अनुभव, वासना, उत्तेजना वा अहं शक्ति वा अपने किसी मिथ्या विश्वास से परिचालित होकर जिस २ सम्बन्ध में जो २ अहित-उत्पादक आन्तरिक वा बाह्यक क्रिया करता है, उस से वह नीच वा पतित बनता है, और ज्यों २ वह नीच और पतित बनता है, त्यों २ उसका हृदय मलिन, कठोर, अन्ध और विकृत और उच्च विकास के लाभ करने के अयोग्य होता जाता है।

१७—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि वह अपने मुख्य लक्ष्य के अनुसार शुभ-उत्पादक नाना सात्विक शक्तियों को लाभ करके ही अपने आत्मिक जीवन को उच्च वा विकसित कर सकता है, और उच्च बनकर ही वह अपनी नीचगतियों के विनाशकारी प्रभावों से मोक्ष और रक्षा, और उच्च जीवन के नाना उच्च फलों को लाभ कर सकता है।

१८—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि मनुष्यात्मा के लिए उच्च जीवन से बढकर कोई लाभ नहीं, और नीच जीवन से बढ़कर कोई हानि नहीं।

१९—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि उसमें अपनी किसी वर्तमान नीच गति और उसके विकार से मोक्ष पाने के निमित्त उसके विषय में पूर्ण वैराग्य विषयक अंगों अर्थात्

(१) विवेक

(२) घृणा

और जिस २ के सम्बन्ध में उसका आचरण नीच गति-मूलक होता हो, वा हुआ हो, उसके सम्बन्ध में

(३) परिताप वा दुःख और

(४) परिशोध भाव

के सम्यक् रूप से विकसित होने की आवश्यकता है।

२०—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि उसमें किसी नई सात्विक शक्ति के विकसित होने पर उसके विषय में

(१) विवेक

(२) श्रद्धा

(३) आकर्षण और

(४) इस आकर्षण-मूलक प्रत्येक क्रिया के द्वारा तुष्टि, शान्ति, हर्ष वा आनन्द विषयक लक्षणों का उत्पन्न होना आवश्यक है।

७. मोक्ष दायक और विकासकारी देव प्रभावों की प्राप्ति के विषय में ज्ञान

२१—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को पूर्ण रूप से उपलब्ध करे, कि वह

(१) आत्मिक-पूर्ण गठन-प्राप्त श्री देवगुरु भगवान् को ही अपने लिए एक मात्र उपास्य, एक मात्र पूर्ण आदर्श और विज्ञान-मूलक वा सत्य धर्म का एक मात्र शिक्षक ग्रहण करके,

(२) उनकी विधि पूर्वक सत्य उपासना करने के योग्य बनके, और उनके

(३) देवशास्त्र, और

(४) उनकी स्थापित देवसमाज

के साथ जीवन्त सम्बन्ध रखके उनके उन देव प्रभावों को लाभ कर सकता है, कि जिनका उसे अपने आत्मा की सत्य मोक्ष और उसके उच्च विकास के लिए लाभ करना अति आवश्यक है।

८. साधन

२२—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आत्मा में अपनी किसी नीच गति के सम्बन्ध में **विराग** और किसी सात्विक शक्ति के प्रति **अनुराग** भावों के जाग्रत करने के लिए देवसमाजस्थ ऐसे उच्च आत्माओं की संगत में रहे, और उनके विषय में उनसे उपदेश सुने, कि जिनमें उस नीच गति से **वैराग्य** और उस शक्ति के प्रति **अनुराग** पाया जाता हो।

२३—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आत्मा में अपनी किसी नीच गति के सम्बन्ध में **विराग** और किसी सात्विक शक्ति के प्रति **अनुराग** विषयक भावों के जाग्रत करने के लिए ऐसे लेखों का पाठ और ऐसे भजनों का गान करे, कि जो ऐसे आत्माओं के रचे हुए हों, कि जिन में वह भाव वर्तमान हों।

२४—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके हृदय में जिस २ नीच गति के सम्बन्ध में विराग और जिस २ सात्विक शक्ति के प्रति अनुराग विषयक कोई लक्षण उत्पन्न हो रहे हों, उनके विकास के लिए वह दृढ-प्रतिज्ञ बनकर **त्याग विषयक प्रत्येक आवश्यक कष्ट वा हानि को स्वीकार करे।**

दूसरा अध्याय

शरीर के सम्बन्ध में

१—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, सूर्य्योदय से अन्यून एक घंटा पहले **शयन त्याग** करे।

२—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह प्रता:काल जागने के साथ ही अथवा कुछ देर के अनन्तर (जहां तक सम्भव हो निर्दिष्ट समय में) **अपना मल त्याग करे।**

३—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह मल के त्याग के अनन्तर मट्टी आदि से अपने हाथों और मंजन आदि से अपने दांतों और खुले जल से अपने नाक के नथनों, अपनी आंखों और सारे मुख को भली भान्त परिष्कार करे।

४—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह मुहं धोने के अनन्तर अथवा किसी अन्य उचित समय में ठंडे अथवा उष्ण जल से (जैसी आवश्यकता हो) स्नान करके सारे शरीर को भली भान्त परिष्कार करे।

५—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह स्नान के अनन्तर अपने सिर और मुख के बालों को तेल और कङ्घी आदि के द्वारा सुसज्जित करे, और यथा साध्य और यथा रुचि किसी सुगन्धि का भी व्यवहार करे।

६—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह ऋतु, समय, सामाजिक प्रथा, अपने व्यवसाय विषयक कर्म, अपने पद, और अपनी योग्यता के अनुसार सुन्दर और परिष्कार वस्त्र धारण करे।

७—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने शरीर, अपने वास स्थान, अपने बालों, अपने पहनने, ओढने और बिछाने के कपड़ों को परिष्कार और दुर्गन्धि से शुद्ध रक्खे।

८—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह आहार से पहले प्रत्येक बार अपने मुहं और हाथों को धो ले।

९—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह ऐसी ही वस्तुएं खावे, या पीवे, कि जो उसके शरीर के लिए स्वास्थ्यकारक हों।

१०—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, प्रति दिन नियत समय मे ही आहार किया करे।

११—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, ऐसी वस्तुएं खावे वा पीवे, कि जो स्वास्थ्य कारक होने के भिन्न उसके लिए **रुचिकर** भी हों।

१२—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, सदा **शुद्ध** और **सुन्दर स्थान** और **पात्र** में भोजन करे।

१३—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह समय, ऋतु, अपने कर्त्तव्य कर्म और अपनी अवस्था का विचार करके, जहां तक सम्भव हो, यथेष्ट रूप से शयन करे।

१४—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, प्रति दिन **नियत समय** में सोवे और निद्रा त्याग करे।

१५—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, किसी ऐसे स्थान और चित्त की ऐसी अवस्था में सोवे, कि जिस से उसे अधिक से अधिक **गहरी नींद** आ सके।

१६—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, रोग आदि के भिन्न प्रति दिन भली भान्त और उचित मात्रा मे **काम** करने का अभ्यास रक्खे।

१७—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने शरीर के कल्याण के लिए उचित्त रूप से **व्यायाम** करने का अभ्यास रक्खे।

१८—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथेष्ट शारीरिक परिश्रम के अनन्तर यथेष्ट विश्राम भी करे।

१९—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अपने शरीर को प्रत्येक **रोग** और **असंयम** से सुरक्षित रखने की चेष्टा करे।

२०—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह रोग के समय आवश्यक **औषधि** और **संयम** ग्रहण करे ।

२१—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पृथिवी के ऊंचे नीचे स्थानों पर चढ़ने उतरने के समय अपने पैरों की गति को ठीक, और शरीर को तुला हुआ रखने की चेष्टा करे ।

२२—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, ऐसे ही **नगरों, घरों,** वा **स्थानों** में वास करे, कि जो उसके शरीर के लिए **स्वास्थ्यकारक** हों ।

२३—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जल, वायु, अग्नि, सूर्य्य, बिजली और भूकम्प सम्बन्धी सब प्रकार की हानियों से अपने शरीर की, जहां तक सम्भव हो, उचित रूप से रक्षा करे ।

२४—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने शरीर को जहां तक सम्भव हो, **उचित रूप से अपने आत्मा के मोक्ष और विकास विषयक साधनों के लिए काम में लावे ।**

वर्जित कर्म

१—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने अस्तित्व की गठन के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान के लाभ करने से उदासीन न हो ।

२—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आत्मा के मोक्ष और विकास विषयक सत्य ज्ञान की प्राप्ति से उदासीन न हो ।

३—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आत्मा के मोक्ष और विकास विषयक साधनों की ओर से उदासीन न हो ।

४—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसे अपने आत्मा की रक्षा और उसके विकास के लिए जिन २ उच्च प्रभाव

संचारक सम्बन्धियों पर, जहां तक विश्वास स्थापन करने की आवश्यकता है, वहां तक उनके सम्बन्ध में अपने विश्वास को उन्नत वा स्थापन करने से विमुख न हो।

५—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने से उच्च आत्माओं के सम्बन्ध में अपने श्रद्धा भाव को कभी शिथिल न होने दे।

६—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी हिताकांक्षी के सम्बन्ध में कभी घृणा वा द्वेष भाव धारण न करे।

७—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी अपराध वा पाप के विषय में अपने किसी हिताकांक्षी सम्बन्धी की ओर से टोके जाने पर उसके प्रति दुश्चिन्ता न करे।

८—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी उच्च प्रभाव संचारक वा अन्य हितकर्ता के सम्बन्ध में कभी कृतघ्न न बने।

९—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने शरीर को अपने आत्मा के लिए आवश्यक संगी और सेवाकारी जान कर उसकी सब प्रकार से उचित रक्षा की ओर से उदासीन न हो।

१०—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने शरीर को अपने आत्मा के लिए आवश्यक संगी और सेवाकारी जान कर उसके किसी रोग निवारण के सम्बन्ध में उदासीन न हो।

११—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह कभी और किसी अवस्था में भी आत्मघात न करे, और अपनी किसी क्रिया के द्वारा अपने शरीर को कोई वृथा हानि न पहुंचावे।

१२—स्वास्तित्व यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आत्मा के मुख्य-लक्ष्य विषयक किसी कर्त्तव्य के साधन में

यथा आवश्यक अपने शरीर के स्वास्थ्य विषयक किसी नियम के भंग वा उसके किसी सुख वा आराम के त्याग करने से विमुख न हो।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में यज्ञ कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को स्वास्तित्व यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता को उन के द्वारा स्वास्तित्व के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उनकी ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ सत्यों के जानने, देखने वा पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपनी किसी हीनता वा पाप के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर होने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों मे स्वास्तित्व यज्ञ विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता के हृदय मे जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए।

६—इन दिनों में उपरोक्त संकल्पों मे से जो २ शुभ संकल्प आरम्भ वा पूरे किए जा सकते हों, उन्हें यज्ञ साधन कर्ता को इन्हीं दिनों मे आरम्भ वा पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

७—इन दिनों में अपने अस्तित्व की गठन के विषय में विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

८—इन दिनों मे अपने अस्तित्व के मुख्य लक्ष्य के विषय में विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

९—इन दिनों में अपने आत्मा की मोक्ष और उसके विकास के सम्बन्ध मे विशेष रूप से विचार करना चाहिये।

१०—इन दिनों में अपने मोक्ष दाता और विकास कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध के विषय में विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

स्वास्तित्व व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को पहले से परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रातःकाल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का सम्मिलित साधन करना चाहिए :—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धापूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए अशीर्वाद प्रार्थना।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आवश्यक आदेशों का एकाग्रता के साथ

धीरे २ पाठ वा श्रवण अथवा इस यज्ञ के सम्बन्ध में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना मोक्ष वा विकास विषयक जो कुछ शुभ साधन किया हो, उस पर चिन्तन, और यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि उच्च भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष में अपने अस्तित्व को इस यज्ञ के सम्बन्ध में और भी विकार रहित और श्रेष्ठ बनाने के निमित्त आकांक्षा और प्रार्थना।

(८) महावाक्य का उच्चारण :—
ॐ उच्चगति, उच्चगति,
एकता, एकता, परम एकता।*

४—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन आहार करना चाहिए।

*परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोड़कर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

पशु जगत् सम्बन्धी

पशु यज्ञ

पशु जगत् सम्बन्धी

पशु यज्ञ

पशु जगत् के जीवों के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के साथ अपने गाढ़ सम्बन्ध को भली भान्त अनुभव करे।

२—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के सम्बन्ध में अपने आपको प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने और मुक्त रखने, और प्रत्येक उच्च गति दायक भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. ज्ञान उपार्जन

३—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी अवस्था के अनुसार जहां तक सम्भव हो, पशु जगत् के विविध प्रकार के जीवों के विषय मे, नाना प्रकार का शुभकर ज्ञान उपार्जन करने की चेष्टा करे।

३. स्नेह वा प्रीति भाव

४—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के जिन नाना जीवों में सौन्दर्य्य वा अन्य सद्गुणों का विकास हुआ है, उन के ऐसे सुन्दर रूप और अच्छे गुणों पर जहां तक उसके लिए सम्भव हो, चिन्तन वा विचार करके, उनके प्रति अपने हृदय में स्नेह वा प्रीति भाव के जाग्रत वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

४. सद्गुणों और सात्विक भावों की उत्पत्ति वा उन्नति

५—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के जिन २ जीवों में निम्न लिखित सद्गुण पाए जाते हैं, उनपर

चिन्तन करके उनमें से जो २ गुण उसमें न हों, उन्हें जहां तक संभव हो, अपने भीतर उत्पन्न करने के लिए चेष्टा करे:—

(१) **निर्दोष क्रीड़ा**—यथा, कई प्रकार की मछलियों, कई प्रकार के पक्षियों और कुत्तों में।

(२) **स्फूर्ति (फुर्ती)**—यथा, बन्दर और हिरन आदि में।

(३) **साहस**—यथा, व्याघ्र आदि में।

(४) **प्रफुल्लता**—यथा, नाना प्रकार के पक्षियों आदि में।

(५) **परिश्रम**—यथा, चिउंटियों और मधु मक्खियों आदि में।

(६) **संचय**—यथा, चिउंटियों और मधु मक्खियों आदि में।

(७) **दलबद्धता**—यथा, चिउंटियों और मधु मक्खियों आदि में।

(८) **दूरदर्शिता**—यथा, चिउंटियों और मधु मक्खियों आदि में।

(९) **एक विवाह**—यथा, कबूतर और मोर आदि में।

(१०) **चित विषयक एकाग्रता**—यथा, बगले आदि में।

५. सात्विक भावों की उत्पत्ति वा उन्नति

६—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए उचित है, कि पशु जगत् के जिन २ जीवों में निम्न लिखित सात्विक भावों का विकास हुआ है, उनमें से जो २ भाव उस में वर्तमान न हों, उन पर विचार करके उन्हें अपने हृदय में उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

(१) वासना रहित वात्सल्य भाव—यथा, नाना पक्षियों और चौपायों आदि में।

(२) कृतज्ञ भाव—यथा, कुत्ते आदि में।

(३) बाध्य भाव—यथा, चिउंटियों, मधुमक्खियों और कुत्ते आदि में।

(४) दया भाव—यथा, किसी २ चौपाए वा पक्षी आदि में। इत्यादि।

६. रक्षा और पालन

७—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह क्या अपने और क्या किसी और के जिन २ पशुओं की पालना और रक्षा के लिए दायी हो, उनकी उचित रूप से पालना और रक्षा करे।

८—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह क्या अपने और क्या किसी और के जिन २ पशुओं की पालना और रक्षा के लिए दायी हो, उनकी अवस्था और आवश्यकता के अनुसार उन्हें नियत समय में यथेष्ट रूप से आहार और जल आदि दे।

९—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित सब प्रकार के पशुओं को यथा साध्य ऐसी ही वस्तुएं खाने और पीने को दे, कि जो उनके शारीरिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक और उनकी अवस्था के अनुकूल हों।

१०—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित सब प्रकार के पशुओं की प्रत्येक ऋतु के प्रतिकूल प्रभावों से यथेष्ट रूप से रक्षा करे।

११—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने सब प्रकार के आश्रित पशुओं को अनुकूल समयों मे यथेष्ट रूप से सूर्य्य की ज्योति और खुली वायु मे रखकर और जहां तक सम्भव हो, उन्हें आवश्यक रूप से व्यायाम करने का अवसर देकर उनके स्वास्थ्य की रक्षा व उन्नति करे।

१२—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित सब प्रकार के पशुओं के शरीरों को सब प्रकार की मैल से सदा परिष्कार रक्खे।

१३—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित सब प्रकार के पशुओं की रुधिरपायी और अन्य हानिकारक कीटों से, जहां तक सम्भव हो, रक्षा करे।

१४—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित सब प्रकार के पशुओं को सदा स्वास्थ्यकर गृह वा स्थान आदि में रक्खे और उस गृह वा स्थान आदि को सदा परिष्कार रक्खे।

१५—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित सब प्रकार के पशुओं के आहार और पान के लिए ऐसे पात्र रक्खे कि जो उन के लिए अनुकूल हों, और वह उन्हें सदा परिष्कार रक्खे।

१६—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने ऐसे सब पशुओं की, जो वृद्ध वा विकलांग आदि होजाने के कारण, कार्य करने के योग्य न हों, उनके मरने तक उचित रूप से रक्षा और पालना करे।

७. चिकित्सा और शुश्रूषा

१७—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित ऐसे सब पशुओं की, जो आहत वा रोगी वा पीड़ित हों, जहां तक सम्भव हो, उचित रूप से चिकित्सा और शुश्रूषा करे।

८. काम

१८—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी सेवाकारी पशु से वहीं तक काम ले, जहां तक ऐसा करना उसकी अवस्था और योग्यता के अनुकूल हो।

१९—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी सेवाकारी पशु से आवश्यक काम लेने के अनन्तर उसे (किसी विशेष अवसर के भिन्न) यथेष्ट रूप से विश्राम दे।

९. समादर, स्नेह, सहाय, और सेवा

२०—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित सब प्रकार के पशुओं के प्रति एक वा दूसरी उचित विधि से अपने समादर और स्नेह भाव को प्रदर्शन करे।

२१—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह, यथा रुचि और समयों में एक वा दूसरे प्रकार की आहारीय वस्तुएं दान करने के भिन्न, प्रति दिन भोजन के समय अन्यून एक बार अपने भोजन की वस्तुओं में से, कल्याण कामना के साथ, कुछ भाग पशु जगत् के उच्च श्रेणी के जीवों के लिए दान किया करे।

२२—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए उचित है, कि वह आवश्यक बोध करने पर, अपने घर के किसी उचित स्थान में कोई जल पात्र पक्षियों के जल पीने के लिए रक्खे, और शुभ भाव के साथ प्रति दिन उसे धोकर उसमें शुद्ध जल डाले वा डलवादे।

२३—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए उचित है, कि वह पशु जगत् के किसी निराश्रित अथवा किसी अन्य कृपा पात्र जीव के किसी रोग वा कष्ट के निवारण करने में यथा अवसर एक वा दूसरे प्रकार की उचित सहाय करे।

२४—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए उचित है, कि वह सामर्थ्य रखने पर, किसी बस्ती वा जंगल के किसी ऐसे स्थान में, जहां पशु जगत् के जीवों के लिए जल का अभाव हो, कोई तड़ाग वा कुंड आदि बनवादे, अथवा इस प्रकार के काम में कोई सहाय करे।

२५—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए उचित है, कि वह सामर्थ्य रखने पर, पशु जगत् के रोगी जीवों की चिकित्सा के लिए कोई चिकित्सालय स्थापन करे, अथवा इस प्रकार के काम में कोई सहाय करे।

२६—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए उचित है, कि वह सामर्थ्य रखने पर, पशु जगत् के निराश्रय, वृद्ध, अंगहीन और दुर्बल जीवों के हित के लिए कोई पशु शाला स्थापन करे, वा इस प्रकार के काम में कोई सहाय करे।

२७—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए उचित है, कि वह सुयोग मिलने और उचित समझने पर पशु जगत् के किसी निराश्रय, वृद्ध वा

रोग-ग्रस्त जीव को किसी पशुशाला वा चिकित्सालय में पहुंचा देने के लिए यत्न वा सहाय करे।

२८—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी अवस्था के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, कार्यकारी और हितकर पशुओं की जाति की उन्नति और उचित वृद्धि में यत्न वा सहाय करे।

१०. उचित अधिकार

२९—पशु यज्ञ साधन कर्ता को यह अधिकार है, कि वह अपनी अथवा किसी अन्य जन वा अपने किसी आश्रित वा अन्य हितकर पशु वा अपने फलों, फूलों, पौदों और अनाज और अन्य नाना पदार्थों की उचित रक्षा के निमित्त, पशु जगत् के किसी आक्रमणकारी वा हानिकारक बड़े वा छोटे जीव को यथावश्यक आघात पहुंचावे, वा उसे आहत वा बध करे।

३०—पशु यज्ञ साधन कर्ता को यह अधिकार है, कि वह मनुष्य और हितकर पशुओं के शरीर में नाना प्रकार के सांघातिक वा कष्टकर रोग-उत्पादक कीटाणुओं को नष्ट करे, और उनके नष्ट करने के कार्य मे सहायक बने।

११. परिशोध

३१—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के किसी जीव वा जीवों के सम्बन्ध में अपने किसी अपराध वा पाप के विषय मे बोध लाभ करने पर, उसके लिए उचित रूप से परिशोध करके, अपने हृदय को पवित्र करने की चेष्टा करे।

१२. मंगल कामना

३२—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के जो २ जीव उसके लिए किसी प्रकार से सेवाकारी प्रमाणित हुए वा होते हों, उन्हें स्मरण करके उनके लिए मंगल कामना करे।

वर्जित कर्म

१. उत्तम गुण

१—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के साथ अपने सम्बन्ध को पहचान कर उस जगत् के उत्तम गुणों की तुलना में जहां तक सम्भव हो, अपने आप को निकृष्ट और हीन न रक्खे ।

२. अंडों और मांस का आहार

२—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के किसी जीव के अंडे वा उस का मांस अथवा उसके अंडों वा मांस से संयुक्त कोई वस्तु न खावे और न पीवे ।

३. दुग्ध

३—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे पशु का जो रोगी हो, अथवा जिस को उचित और स्वास्थ्य कारक आहार न मिला हो, अथवा जिसे अनुचित दुख देकर उससे दूध प्राप्त किया गया हो, उसका दूध व्यवहार न करे ।

४. पालन

४—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित किसी पशु को **उचित समय** में आहार और जल आदि देने में त्रुटि न करे ।

५—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी आश्रित पशु को **उचित मात्रा** में आहार और जल आदि देने मे त्रुटि न करे ।

६—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी आश्रित पशु को उचित **विश्राम और सुख** देने में त्रुटि न करे ।

७—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी आश्रित पशु को ऐसी वस्तुएं खाने और पीने के लिए न दे, कि जो उसके लिए हानिकारक हों।

८—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित किसी पशु के शरीर और वास स्थान को शुद्ध रखने में त्रुटि न करे।

५. चिकित्सा

९—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के ऐसे जीवों की, जो उसके आश्रित हों, रोग वा किसी पीड़ा के समय आवश्यक चिकित्सा और सेवा करने से विमुख न रहे।

६. निर्दयता

१०—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी दूध देने वाले पशु को यन्त्रणा वा क्लेश पहुंचा कर दूध प्राप्त न करे।

११—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह दूध देने वाले पशुओं का दूध दोहने के समय, उनके बच्चों के लिए यथेष्ट रूप से दूध छोड़ देने में त्रुटि न करे।

१२—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी आश्रित पशु को कोई अविधेय वा उचित सीमा से अधिक दंड न दे।

१३—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के किसी जीव को छेड़कर वा किसी और प्रकार से कोई अनुचित कष्ट न पहुंचावे।

१४—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के किसी सेवाकारी पशु से, उसकी योग्यता से बढकर काम न ले।

१५—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के किसी सेवाकारी जीव से, उसकी रोगी वा पीड़ित अवस्था में काम न ले।

१६—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी प्रकार का अनुचित क्लेश पहुंचाकर किसी पशु से कोई काम न ले।

१७—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आश्रित पशुओं की दुख दायक और हानिकारक कीटों से रक्षा करने में यथा साध्य जान बूझकर कोई त्रुटि न करे।

१८—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वा किसी और के किसी कौतुक भाव की तृप्ति के लिए पशु जगत् के जीवों को आपस में न लड़ावे।

७. आहत वा बध

१९—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के किसी जीव को, आखेट (शिकार) विषयक प्रसन्नता लाभ करने के लिए कभी आहत वा बध न करे, और न किसी की इस काम में कोई सहाय करे।

२०—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के किसी जीव को, उसकी खाल, तन्द्री, हड्डी, वा उस से तेल वा सूत वा पर आदि के लाभ करने के लिए कभी आहत वा बध न करे, और न किसी और की ऐसे काम में सहाय करे।

२१—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पशु जगत् के किसी जीव को अपने वा किसी और जन, वा पशु के आहार के लिए कभी बध न करे, और न किसी और की इस काम में सहाय करे।

२२—पशु यज्ञ साधन कत के लिए आवश्यक है, कि वह मिथ्या विश्वास आदि किसी बुरे भाव से परिचालित होकर किसी पशु को आहत वा बध न करे।

२३—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह

मार्ग में चलते समय, किसी कीट को अपनी आंखों से देख लेने पर, उसे अपने पैरों से कुचल कर आहत वा बध न करे।

२४—पशु यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी वैज्ञानिक परीक्षा के नाम से भी, चाहे वह मनुष्य वा पशु जगत् के किसी साधारण रोग की निवृत्ति के सम्बन्ध में किसी अवगति के लाभ करने के सच्चे अभिप्राय से भी क्यों न हो, पशु जगत् के किसी जीव को आहत वा वध न करे।*

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में यज्ञ कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को पशु जगत् सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता को पशु जगत् के सम्बन्ध में उनके द्वारा अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को पशु जगत् के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीच गति के विषय में बोध प्राप्त करने पर उसके दूर होने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

* देखो 'सेवक' (मासिक पत्र देव समाज) खड १७ सख्या ६ पृष्ठ २४

५—इन दिनों में पशु यज्ञ विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता के हृदय में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन में से जो २ संकल्प इन्हीं दिनों में आरम्भ वा पूरे हो सकते हों, उन्हें उसे इन्ही दिनों में आरम्भ वा पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए ।

६—इन दिनों में अपने आश्रित जीव जन्तुओं की कुछ विशेष रूप से सेवा करनी चाहिए ।

७—इन दिनों में अपने आश्रित जीवों के भिन्न सुयोग पाने पर यथासाध्य अन्य हितकर जीवधारियों की भी एक वा दूसरे प्रकार से कोई विशेष सेवा करनी चाहिए ।

८—इन दिनों में यथा सामर्थ्य पशु जगत् सम्बन्धी किसी पुस्तक वा निबन्ध आदि का पाठ करना चाहिए ।

९—इन दिनों में यथा सामर्थ्य पशु जगत् सम्बन्धी ऐसी पुस्तकों और छवियों आदि का दान करना चाहिए, कि जिन के पढने वा देखने से, पढने वा देखने वालों के भीतर पशु जगत् के प्रति किसी उच्च भाव के जाग्रत होने की सम्भावना हो ।

१०—इन दिनों में यथा साध्य सुन्दर २ पक्षियों, मछलियों, तीतरियों और उच्च श्रेणी-जात किसी एक वा दूसरे दर्शनीय वा हितकर पशु का विशेष रूप से दर्शन करना चाहिए ।

पशु व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को पहले से परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए ।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, प्रातः काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए ।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहनकर साधन के लिए बैठना चाहिए ।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का साधन करना चाहिए :—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धापूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना।

(५) पशु यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण अथवा इस यज्ञ के सम्बन्ध में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना जो कुछ मोक्ष वा विकास विषयक शुभ साधन किया हो, उस पर चिन्तन और यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि उच्च भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष में पशु जगत् के सम्बन्ध में अपने आपको और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना।

(८) महावाक्य का उच्चारण :—
ओं उच्चगति, उच्चगति;
एकता, एकता, परम एकता।*

५—व्रत के दिन अपने घर के पालतू चौपायों के वास स्थान पर बन्दनवार लगानी चाहिए।

---

*परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

६—व्रत के दिन अपने पालतू जीवों का एक वा दूसरे प्रकार से कोई उचित शृङ्गार करना चाहिए।

७—व्रत के दिन कुछ विशेष आहारीय वस्तुओं पर मंगल कामना करके, उन्हें अपने आश्रित और अन्य हितकर जीवों को खिलाना चाहिए।

८—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन आहार करना चाहिए।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

परलोक यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

परलोक यज्ञ

मृत सम्बन्धियों के सम्बन्ध में आदेश।

१. सम्बन्ध बोध

१—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह स्थूल देह त्यागी अपने विशेष २ सब सम्बन्धियों के साथ अपना सम्बन्ध भली भान्त अनुभव करे।

२—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह स्थूल देह त्यागी प्रत्येक आत्मा के सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने वा मुक्त रखने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

३—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर स्थूल देह त्यागी और जीवित अपने प्रत्येक निकट के सम्बन्धी को यथा साध्य किसी नीच गति से निकालने अथवा उसकी किसी उच्च गति में सहायक होने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. मूल ज्ञान

४—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने, कि प्रत्येक आत्मा अपने जिस २ नीच वा उच्च भाव से परिचालित होकर जो २ कुछ चिन्ता वा अन्य क्रिया करता है, उसके अनुसार परिवर्तित होकर वह अपना रूप निर्माण करता है।

५—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने, कि प्रत्येक आत्मा अपनी प्रत्येक गति से परिवर्तित होकर जिस श्रेणी का नीच वा उच्च रूप ग्रहण करता है, उसी के अनुसार अपनी स्थूल देह के त्याग करने और योग्यता रखने

और अनुकूल वेष्ठनी के प्राप्त होने पर अपने लिए नीच वा उच्च श्रेणी का **भौतिक सूक्ष्म शरीर** निर्माण करता है।

६—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने, कि प्रत्येक आत्मा अपने भौतिक स्थूल शरीर के त्याग के अनन्तर, योग्यता रखने और अनुकूल वेष्ठनी के प्राप्त होने पर, अपने लिए अपने पहिले भौतिक शरीर के सदृश ही कोई नया **भौतिक सूक्ष्म शरीर** निर्माण करता और कर सकता है।

७—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने, कि प्रत्येक आत्मा को अपनी नीच वा उच्च गति का फल उसके नीच वा उच्च परिवर्तन के द्वारा सदा साथ २ मिलता रहता है।

८—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने, कि जो आत्मा अपनी किसी प्रकार की नीच क्रिया से अपने भौतिक शरीर के जिस २ अंग को जितना अधिक व्यवहार करता है, उतना ही वह उस अंग के सम्बन्ध में सूक्ष्म परमाणुओं को निर्माण और संगठित करने की योग्यता को खोता जाता है; और जिस २ अंग के सम्बन्ध में वह अपनी इस योग्यता को जितने अंश नष्ट कर देता है, उतने अंश सूक्ष्म शरीर के निर्माण होने के समय, वह उस अंग को निर्माण नहीं कर सकता, और इसी लिए उस अंग से या तो वह पूर्णतः विहीन होता है, वा उसे अपूर्ण रूप से लाभ करता है।

९—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने, कि प्रत्येक आत्मा अपने स्थूल शरीर की मृत्यु के अनन्तर अपनी नीच वा उच्च गतियों के अनुसार अपना जिस श्रेणी का नीच वा उच्च रूप और भौतिक सूक्ष्म शरीर ग्रहण करता है, उसी श्रेणी के अनुसार अधम वा परलोक सम्बन्धी किसी नीच वा उच्च लोक को प्राप्त होता है।

१०—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने, कि जो आत्मा अपने भौतिक स्थूल शरीर के त्याग करने पर उच्च श्रेणी के लोकों में से जिस किसी उच्च संख्या के लोक में प्रवेश करने के योग्य होता है, वहां वह उच्च श्रेणी के आत्माओं के साथ निवास की नाना भलाइयों के भिन्न, योग्यता रखने पर, उनसे और उनसे ऊपर के लोकों के निवासियों से विविध प्रकार के उन्नति-उत्पादक प्रभावों को भी लाभ कर सकता है।

११—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने, कि जो आत्मा अपने भौतिक स्थूल शरीर के त्याग करने पर जिस किसी अपेक्षाकृत नीचे के लोक में प्रवेश करता है, उसी के नीच आत्माओं के साथ वास करता है, और वहां रहकर विविध प्रकार के हानिकारक और दुखदाई सम्बन्धियों और उनसे विविध प्रकार के कष्ट और उनके बुरे वा पतनकारी प्रभावों को लाभ करता है।

३. अन्य ज्ञान

१२—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह मृत्यु तत्व के विषय में अपनी योग्यता के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, अवगति लाभ करे।

१३—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह स्थूल देह त्यागी अपने किसी सम्बन्धी आत्मा के विषय में अपनी योग्यता के अनुसार किसी ठीक विधि से जो २ कुछ ठीक वृत्तान्त जान सकता हो, उसके जानने की चेष्टा करे।

१४—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह परलोक और परलोक वासी आत्माओं के विषय में अपनी योग्यता के अनुसार जहां तक और जो २ कुछ सत्य ज्ञान उपार्जन कर सकता हो, उसके उपार्जन करने की चेष्टा करे।

१५—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार "अधम लोक" और "अधम लोक वासी" आत्माओं के विषय में जहां तक और जो २ कुछ सत्य ज्ञान उपार्जन कर सकता हो, उसके उपार्जन करने की चेष्टा करे।

४. मेल मिलाप

१६—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह योग्यता रखने पर अपने आप अथवा किसी अन्य योग्य मध्यवर्ती के द्वारा अपने विशेष २ मृत सम्बन्धियों के साथ समय २ में मेल मिलाप और बात चीत करने की चेष्टा करे।

५. श्रद्धा और सन्मान भाव

१७—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्थूल देह त्यागी विविध सम्बन्धियों के सद्‌गुणों और सात्विक भावों के विषय में जहां तक अवगत हो, वहां तक उन पर बारम्बार विचार के द्वारा उनके प्रति अपने हृदय में सन्मान वा श्रद्धा भाव को उत्पन्न वा उन्नत करे।

१८—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने स्थूल देह त्यागी नाना सम्बन्धियों के प्रति अपनी बात चीत आदि में सर्वदा उचित रूप से सन्मान प्रदर्शन करे।

१९—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसने जिस २ मृत सम्बन्धी से जिस २ प्रकार के उपकार पाए हों, उनपर बारम्बार चिन्तन के द्वारा उनके प्रति अपने हृदय में प्रीति और कृतज्ञ भावों के उत्पन्न वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

६. परिशोध

२०—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि जिन जिन स्थूल देह त्यागी आत्माओं के सम्बन्ध में उसे अपने किसी पाप वा

अपराध के लिए बोध उत्पन्न हो, उसके लिए उचित परिशोध करके उनके साथ अपने सम्बन्ध को पवित्र करे।

२१—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी मृत सम्बन्धी से धन धरती आदि किसी सम्पत्ति के प्राप्त होने पर, और उसके विषय में यह जानने पर, कि वह सब अथवा उसका कोई अंश अन्याय के द्वारा उपार्जन किया गया था, उस सम्बन्धी के आत्मा के कल्याण के लिए उसके सम्बन्ध में आवश्यक और उचित परिशोध करे।

७. तुष्टि और तृप्ति

२२—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी मृत सम्बन्धी के किसी निराश्रय वा असहाय सम्बन्धी की जिस २ विषय में जो २ कुछ सहाय कर सकता हो, वह सहाय करके उसकी तुष्टि करे।

२३—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने जिन २ मृत सम्बन्धियों की जिन २ शुभ कामनाओं को पूरा कर सकता हो, उनके विषय में अवगत होने पर, उन्हें अपनी योग्यता के अनुसार पूरा करके उनकी तृप्ति व तुष्टि करे।

८. मंगल कामना

२४—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने विशेष २ मृत सम्बन्धियों को स्मरण करके उनके लिए मंगल कामना करे।

वर्जित कर्म

१—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी उचित कारण के बिना अपने किसी मृत सम्बन्धी का कभी कोई दोष वा अपराध वर्णन न करे।

२—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी परलोक वासी हिताकांक्षी वा हितकारी सम्बन्धी को सर्वथा भूल न जाए।

३—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी मृत सम्बन्धी के किसी पदार्थ पर आधिपत्य लाभ करने पर उसका अनुचित व्यवहार न करे।

४—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी मृत सम्बन्धी के किसी निराश्रय वा असहाय सम्बन्धी की यथासाध्य किसी उचित सहाय के करने से उदासीन वा विमुख न हो।

५—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसे अपने किसी मृत सम्बन्धी के सम्बन्ध में अपने वा उसके किसी पाप वा अपराध के लिए जो कुछ परिशोध करना उचित बोध हो, उसके करने से विमुख न हो।

६—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी मृत सम्बन्धी की किसी शुभ इच्छा के पालन करने का व्रत लेकर यथा साध्य उसके पालन में कोई त्रुटि न करे।

७—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी स्थूल देह त्यागी परन्तु जीवित सम्बन्धी को अपनी किसी अनुचित क्रिया से कोई दुःख न पहुंचावे।

८—परलोक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने विशेष २ परलोक वासी सम्बन्धियों के लिए मंगल कामना करने से उदासीन अथवा विमुख न हो।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में यज्ञ साधन कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को परलोक यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता को अपने किसी मृत सम्बन्धी के सम्बन्ध में उनके द्वारा अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उनकी ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने किसी मृत सम्बन्धी के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों परलोक यज्ञ विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता के हृदय में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए।

६—इन दिनों में उपरोक्त संकल्पों में से जो २ शुभ संकल्प आरम्भ वा पूरे हो सकते हों, उन्हें यज्ञ साधन कर्ता को इन्हीं दिनों में आरम्भ वा पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

७—इन दिनों में योग्यता रखने पर अपने आप वा सम्भव होने पर किसी योग्य मध्यवर्ती के द्वारा अपने परलोक वासी सम्बन्धियों के साथ विशेष रूप से बात चीत करनी चाहिए, और ऐसी बात चीत के द्वारा एक दूसरे के विषय में अधिक से अधिक ज्ञान और एक दूसरे के प्रति शुद्ध अनुराग के बढाने की चेष्टा करनी चाहिए।

८—इन दिनों में परलोक विषयक उत्तम पुस्तकों और उपदेशों आदि का विशेष रूप से पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

९—इन दिनों में जीवन और मृत्यु विषयक तत्वों पर विशेष रूप से चिन्तन और विचार करना चाहिए।

१०—इन दिनों में जिन २ परलोक वासी आत्माओं के सम्बन्ध में जिस २ दिन श्राद्ध करना आवश्यक हो, उस दिन विधि पूर्वक उसका साधन करना चाहिए।

श्राद्ध विधि

१—व्रत साधन से पहले अपने साधन स्थान को भली भान्त परिष्कार और सुसज्जित करना चाहिए।

२—परलोक वासी जिस सम्बन्धी का श्राद्ध करना हो, उसकी यदि कोई छवि वा मूर्ति वर्तमान हो, अथवा उसकी कोई और वस्तुएं वर्तमान हों, तो उन सब को (अथवा कुछ को) साधन स्थान में सजा कर रखना चाहिए।

३—स्नान करके और शुद्ध वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—श्री देवगुरु भगवान् को स्मरण करके और उनकी छवि के सन्मुख खडे होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन करना चाहिए।

५—श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर देव स्तोत्र का गान करना चाहिए।

६—श्राद्ध की सुफलता के लिए श्री देवगुरु भगवान् से आशीर्वाद प्रार्थना करनी चाहिए।

७—अपने परलोक वासी सम्बन्धी वा सम्बन्धियों को स्मरण करके किसी पात्र में पुष्प अथवा पुष्पहार रखकर उसका वा उनका अर्चन करना चाहिए।

८—अपने ऐसे सम्बन्धी वा सम्बन्धियों के जीवन के अच्छे वा सात्विक गुणों के विषय में कोई संक्षिप्त पाठ अथवा कथन करना चाहिए, और उससे वा उन से श्राद्ध कर्ता ने जो २ उपकार पाए हों, उन्हें जहां तक सम्भव हो, स्मरण करके उनके प्रति अपने भावों का प्रकाश करना चाहिए।

९—यदि किसी परलोक वासी सम्बन्धी के सम्बन्ध में श्राद्ध कर्ता के हृदय में किसी हानि परिशोध के करने का बोध जाग्रत हो, तो उसके पूरा करने के लिए प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

१०—यदि किसी परलोक वासी सम्बन्धी की किसी शुभ इच्छा का पालन करना उस पर कर्त्तव्य हो, और उसमें उसे कोई त्रुटि बोध हो, तो उसके दूर करने के लिए प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

११—यदि किसी परलोक वासी सम्बन्धी की स्मृति रक्षा के निमित्त साधन कर्ता के हृदय में किसी प्रकार का कोई शुभ संकल्प उत्पन्न हो, तो उसके पूरा करने के लिए प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

१२—अपने परलोक वासी विशेष २ सम्बन्धियों के साथ अपने सम्बन्ध को और भी गाढ और हितकर बनाने के लिए आकांक्षा करनी चाहिए।

परलोक वासी व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को पहले से परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, प्रात:काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का सम्मिलित साधन करना चाहिए :—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित पाठ वा गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धापूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए अशीर्वाद प्रार्थना।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण, अथवा इस यज्ञ के सम्बन्ध में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना मोक्ष वा विकास विषयक जो २ कुछ शुभ लाभ किया हो उस पर चिन्तन, और यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि उच्च भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष में अपने मृत सम्बन्धियों के सम्बन्ध में अपने आपको और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना।

(८) महावाक्य का उच्चारण :—
ओं उच्चगति, उच्चगति;
एकता, एकता, परम एकता।*

५—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन आहार करना चाहिए।

६—व्रत के दिन यथा साध्य कुछ आहार सम्बन्धी वस्तुएं अधिकारी मनुष्यों और पशुओं को दान करनी चाहिएं।

*परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार वार उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी
स्वजाति यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

स्वजाति यज्ञ

स्वजाति जनों के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति वा अपने जाति जनों के साथ अपने सम्बन्ध को भली भान्त अनुभव करे।

२—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह स्वजाति जनों के सम्बन्ध में अपने आपको प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने वा मुक्त रखने और प्रत्येक उच्च गति दायक भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. अवगति

३—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने जाति जनों के सब प्रकार के बुरे और भले गुणों के विषय में जहां तक उसके लिए सम्भव हो, अवगत होने की चेष्टा करे।

४—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति की शिक्षा, प्रथा, रीति, नीति, और उसके साहित्तय, आचार, व्यवहार, अनुष्ठान आदि में जो कुछ निर्दोष और हितकर हो, उसे यथा साध्य जानने की चेष्टा करे।

३. सन्मान और पवित्र अभिमान भाव

५—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति के ऐसे सब स्मरणीय स्त्री और पुरुषों के प्रति जिन्होंने उसके जाति जनों में:—

(१) उच्च जीवन वा चरित्र के विकास, (२) उचित दल वद्धता की महिमा के प्रचार, (३) तत्वज्ञान के अनुशीलन,

(४) किसी कुनीति वा कुप्रथा के निवारण, (५) विज्ञान की उन्नति, (६) शिल्प की उन्नति, (७) वाणिज्य की उन्नति, (८) साहित्य की उन्नति, (९) साधारण शिक्षा के प्रचार, (१०) किसी साधारण पीड़ा के निवारण, (११) दरिद्रों और अनाथों के कल्याण, और (१२) उचित वीरता के प्रदर्शन से कोई प्रशंसनीय और विशेष सेवा की हो, उनके विषय में अवगत होने पर उनके लिए उचित सन्मान और कृतज्ञ भाव अनुभव करे।

६—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह ऐसे सब स्थानों और चिन्हों के विषय में अवगत होकर जो उसके जातीय गौरव के प्रकाशक हों, उनके प्रति उचित सन्मान और पवित्र अभिमान अनुभव करे।

७—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे साहित्य के विषय में अवगत हो कर जो उसके जातीय गौरव को सत्य २ प्रकाश करता हो, उसके प्रति उचित सन्मान और पवित्र अभिमान अनुभव करे।

८—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह ऐसे सब प्रकार के शिल्प विषयक कार्यों के विषय में अवगत होकर जो उसके जातीय गौरव के प्रकाश करने वाले हों, उनके प्रति उचित सन्मान और पवित्र अभिमान अनुभव करे।

४. सहाय और सेवा

९—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने जातीय जनों के भीतर उचित सुनीति मूलक सब प्रकार की दल बद्धता के भाव को यथा साध्य उत्पन्न और उन्नत करने के लिए चेष्टा करे।

१०—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार जहां तक सम्भव हो, अपने जातीय जनों में

उच्च जीवन वा उच्च चरित्र, विद्या, विज्ञान, शिल्प और वाणिज्य आदि की उन्नति में सहायक बने।

११—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति के महा जनों की सब प्रकार की उचित स्मृति और कीर्ति की रक्षा के लिए यथा सामर्थ्य चेष्टा वा उसमें सहाय करे।

१२—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार जहां तक सम्भव हो, अपनी जाति के पुरुषों के साथ २ अपनी जाति की स्त्रियों की सब प्रकार की उन्नति में सहाय करे।

१३—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सामर्थ्य अपनी जाति के अनाथ लड़कों और लड़कियों के लिए कोई अनाथालय स्थापन करे, अथवा ऐसे शुभ काम में कोई उचित सहाय करे।

१४—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सामर्थ्य असहाय विधवाओं की रक्षा और उन्नति के लिए कोई विधवा आश्रम स्थापन करे, अथवा ऐसे शुभ काम में किसी प्रकार की उचित सहाय करे।

१५—स्वाजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सामर्थ्य अपनी जाति के ऐसे लोगों के लिए जो एक वा दूसरे कारण से अपनी रक्षा अथवा अपने भरण पोषण के अयोग्य हों, दरिद्र वा सहाय शाला स्थापन करे, अथवा ऐसे शुभ काम में कोई उचित सहाय करे।

१६—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सामर्थ्य अपने जाति जनों की शारीरिक चिकित्सा वा उन्नति के लिए कोई चिकित्सालय वा कोई संस्था स्थापन करे, अथवा ऐसे शुभ काम में कोई उचित सहाय करे।

१७—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सामर्थ्य अपने जाति जनों के मानसिक कल्याण के लिए कोई

विद्यालय अथवा महाविद्यालय वा विश्वविद्यालय अथवा पुस्तकालय आदि स्थापन करे, अथवा ऐसे किसी काम में कोई उचित सहाय करे।

१८—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सामर्थ्य अपने जाति जनों में शिल्प की उन्नति के लिए कोई शिल्प विद्यालय वा प्रदर्शिनी आदि स्थापन करे, अथवा ऐसे काम में कोई उचित सहाय करे।

१९—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा साध्य स्वजाति जनों की उत्पन्न की वा बनाई हुई वस्तुओं का व्यवहार करके उनकी आय में उचित रूप से सहाय करे।

२०—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सामर्थ्य अपनी जाति के साहित्य की उन्नति के लिए आप कोई उत्तम पुस्तकें रचे वा अनुवाद करे, अथवा ऐसे कामों में किसी प्रकार की कोई उचित सहाय करे।

२१—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सामर्थ्य अपनी जाति की प्रत्येक पुरानी विद्या को जहां तक वह उसकी वर्तमान अवस्था के अनुकूल हो, और उसकी उन्नति के लिए आवश्यक हो, जीवित रखने वा उन्नत करने की चेष्टा करे।

२२—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति के निम्न श्रेणी के जनों को उन्नयन करने के निमित्त यथा साध्य आप कोई संस्था स्थापन करे, अथवा ऐसे काम में कोई उचित सहाय करे।

२३—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह ऐसे लोगों के कार्य में जो अपने जातीय जनों को किसी पाप वा बुरे अभ्यास से निकालने वा उनमें परोपकार विषयक किसी भाव के विकसित करने में लगे हुए हों, यथा साध्य सब प्राकर की उचित सहाय करे।

२४—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने जाति जनों का उनकी नीच गतियों से उद्धार और उन्हें उच्च गतियों में विकसित करने की योग्यता रखने और उचित बोध करने पर, ऐसे काम के लिए अपने सारे जीवन वा अपनी सारी सम्पत्ति को भेंट करे।

५. परिशोध

२५—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी स्वजाति जन के सम्बन्ध में अपने किसी पाप वा अपराध के विषय में बोध लाभ करने पर, उसके लिए उचित परिशोध करके, उसके विकार से अपने हृदय को पवित्र करने की चेष्टा करे।

६. मंगल कामना

२६—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह स्वजाति जनों के सम्बन्ध में किसी अभाव के बोध करने पर, उसके दूर होने अथवा उन में एक वा दूसरे प्रकार के शुभ की उत्पत्ति के लिए कामना करे।

वर्जित कर्म

१—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी अनुचित क्रिया के द्वारा अपने किसी जाति जन को किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे।

२—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति के किसी साधारण हितकर काम को अपनी किसी अनुचित क्रिया के द्वारा हानि न पहुंचावे।

३—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति के किसी लाभ के लिए किसी और जाति के उचित और मुख्य लाभ को कोई हानि न पहुंचावे।

४—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति की भली बातों के साथ उसकी किसी मिथ्या वा बुरी

शिक्षा, उसकी बुरी प्रथाओं, बुरी रीतियों और बुरे आचारों वा व्यवहारों की कभी प्रशंसा और पोषकता न करे।

५.—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी जाति का अनुचित पक्षपाती होकर किसी और जाति के मनुष्यों पर किसी प्रकार का अन्याय अथवा अत्याचार न करे।

६—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी अनुचित क्रिया के द्वारा अपनी जाति के भिन्न २ सम्प्रदायों में परस्पर द्वेष और अनमेल की उत्पत्ति और उन्नति न करे।

७—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी अनुचित क्रिया से किसी अन्य जाति के लिए अपनी जाति के किसी उचित लाभ को हानि न पहुंचावे।

८—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी अनुचित बात चीत वा अन्य क्रिया से अपनी जाति के महा पुरुषों का अपमान वा निरादर न करे।

९—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने जाति जनों में मिथ्या वा अहित-मूलक किसी प्रचलित भेद वा घृणा का साथ देकर जातीय बल को कोई हानि न पहुंचावे।

१०—स्वजाति यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जातीय बल वर्द्धक किसी साधारण काम में अपनी किसी अनुचित क्रिया के द्वारा कोई विघ्न उत्पन्न न करे।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में यज्ञ कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को स्वजाति यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता को स्वजाति जनों के सम्बन्ध में उनके द्वारा अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उनकी ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने जाति जनों के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर होने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों में स्वजाति यज्ञ विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता के हृदय में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए।

६—इन दिनों में उपरोक्त संकल्पों में से जो २ संकल्प आरम्भ वा पूरे हो सकते हों, उन्हें यज्ञ साधन कर्ता को इन्हीं दिनों में आरम्भ वा पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

७—इन दिनों में अपनी जाति की अवस्था पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

८—इन दिनों में अपने जाति सम्बन्धी एक वा दूसरे प्रकार के इतिहास का पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

९—इन दिनों मे अपनी जाति के बडे २ उपकारी और प्रभाशाली स्त्री पुरुषों की जीवन कथाओं का पाठ अथवा श्रवण और उनकी समाधियों की यात्रा अथवा छवियों का दर्शन करना चाहिए।

१०—इन दिनों में अपनी जाति की सच्ची महिमा के सम्बन्ध में सच्चे गीतों का गान करना चाहिए।

११—इन दिनों में योग्यता रखने पर अपनी जाति अथवा जातीयता के विषय में कोई उपदेश वा व्याख्यान देना चाहिए।

१२—इन दिनों में अपनी जाति के लिए विशेष रूप से मंगल कामना करनी चाहिए।

स्वजाति व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को पहले से परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रातः काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का सम्मिलित साधन करना चाहिए :—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित पाठ वा गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण अथवा इस यज्ञ के सम्बन्ध में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना मोक्ष वा विकास विषयक जो २ कुछ शुभ लाभ किया हो, उस

पर चिन्तन और यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि उच्च भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष में स्वजाति जनों के सम्बन्ध में अपने आप को और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना।

(८) महावाक्य का उच्चारण:—
ओं उच्चगति, उच्चगति,
एकता, एकता, परम एकता*

५—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन आहार करना चाहिए।

६—व्रत के दिन स्वजाति सम्बन्धी किसी शुभ काम के लिए यथा सामर्थ्य दान करना चाहिए।

* परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

भौतिक जगत् सम्बन्धी

भौतिक यज्ञ

भौतिक जगत् सम्बन्धी

भौतिक यज्ञ

भौतिक जगत् के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक जगत् के साथ अपने अस्तित्व के घनिष्ठ सम्बन्ध को भली भान्त अनुभव करे।

२—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक जगत् के सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने वा मुक्त रखने, और उच्च गति दायक प्रत्येक भाव के जाग्रत वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. ज्ञान उपार्जन

३—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह

(१) भौतिक जगत् सम्बन्धी पदार्थों,

(२) भौतिक जगत् सम्बन्धी शक्तियों और उनकी निर्माण और ध्वंसकारी गतियों,

(३) भौतिक जगत् सम्बन्धी स्थूल सौर जगत् और अन्यान्य नक्षत्रों, और

(४) भौतिक जगत् सम्बन्धी सूक्ष्म सौर जगत् अथवा परलोक के विषय में जहां तक उसके लिए सम्भव हो, ज्ञान उपार्जन करने की चेष्टा करे।

३. गृह

४—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, प्रशस्त और शुष्क घर मे वास करे।

५—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर में शुद्ध और खुली वायु के प्रवेश करने और प्रवाहित रहने के लिए आवश्यक रूप से खिडकियां और द्वार आदि रक्खे और उनका उचित रूप से व्यवहार करे।

६—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर के भीतर यथेष्ट रूप से सूर्य्य के प्रकाश के प्रवेश करने के लिए रौशनदान वा झरोखे आदि रखकर उचित रूप से उनका व्यवहार करे।

७—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर के प्रत्येक स्थान को परिष्कार रक्खे।

८—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर के प्रत्येक स्थान को दुर्गन्धि से शुद्ध रक्खे।

९—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर में जल गिराने के लिए निर्दिष्ट स्थान रक्खे और व्यवहार करे।

१०—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर में मल त्याग के लिए उचित और निर्दिष्ट स्थान रक्खे।

११—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर की मल बाहक सब प्रकार की नालियों को खुले जल के द्वारा भली भान्त धो वा धुलवा कर परिष्कार रक्खे।

१२—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह मल त्याग सम्बन्धी सब निर्दिष्ट स्थानों को भली भान्त परिष्कार रक्खे।

१३—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार, जहां तक सम्भव हो, अपने मिलने, बैठने, पढने, सोने और खाना खाने आदि के प्रकोष्ठों को सुन्दर और सुसज्जित रक्खे।

४. सेवन

१४—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह

भौतिक जगत् के प्रकाश, ताप, जल और वायु का, उचित समय में और उचित प्रकार से सेवन करे।

१५—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, शुद्ध और स्वास्थ्यकर जल और वायु सेवन करे।

५. वस्तु व्यवहार

१६—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर की सब वस्तुओं को शुद्ध और सुन्दर अवस्था में रक्खे।

१७—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर की सब वस्तुओं को अपने २ स्थान और सम्बन्ध में सजाकर सुश्रृङ्खला और परिपाटी के साथ रक्खे।

१८—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वा किसी और के व्यवहार के लिए जिस वस्तु को उसके निर्दिष्ट स्थान से उठाए, उसे व्यवहार के अनन्तर फिर वहीं रक्खे।

१९—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी प्रत्येक वस्तु की उचित रूप से रक्षा करे।

६. निर्माण कार्य

२०—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी अवस्था के अनुसार जब कोई घर, मन्दिर, आश्रम, चिकित्सालय, कार्यालय, तड़ाग, कूप और मार्ग आदि बनाना चाहे, तो उसके प्रकृत उद्देश्य के अनुसार और सुन्दर और सुशोभन आकार मे बनवाए।

७. मोह से रक्षा

२१—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक यज्ञ सम्बन्धी धन, धरती आदि विविध पदार्थो को औरों से प्राप्त होकर, अथवा उनके उपार्जन में आप प्रवृत्त होकर, अपने हृदय को उनके हानिकारक मोह से सदा सुरक्षित रक्खे।

८. कृतज्ञ भाव और सेवा

२२—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक जगत् में पृथ्वी, वायु, चन्द्र और सूर्य्य से जितने २ प्रकार के उपकार लाभ करता है, उन्हें विचार के द्वारा बारम्बार अपने सन्मुख लाकर उनके सम्बन्ध में अपने आप को उपकृत बोध करने और उन के लिए, जहां तक सम्भव हो, अपने आपको सेवाकारी बनाने का अभ्यास करे।

९. मंगल कामना

२३—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक जगत् में से पृथ्वी, वायु, चन्द्र और सूर्य्य के अमूल्य उपकारों से अपने आप को उपकृत अनुभव करके उनके लिए मंगल कामना करने का अभ्यास करे।

१०. परिशोध

२४—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक जगत् के सम्बन्ध में अपने किसी पाप वा अपराध के विषय में बोध लाभ करने पर उसका उचित परिशोध करके अपने हृदय को पवित्र करने की चेष्टा करे।

वर्जित कर्म

१. निवास

१—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, अति संकीर्ण घर में वास न करे।

२—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने घर के किसी स्थान को मैला और कुत्सित न रक्खे।

३—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, किसी स्वास्थ्य नाशक घर में वास न करे।

४—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, किसी स्वास्थ्य नाशक नगर वा ग्राम में वास न करे।

२. उपार्जन

५—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य वा पशु के सम्बन्ध में अपनी किसी पाप वा अपराध मूलक क्रिया के द्वारा धन वा धरती आदि किसी पदार्थ को लाभ न करे।

६—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन, धरती आदि पदार्थों के उपार्जन में **उचित से अधिक परिश्रम और क्लेश** स्वीकार न करे।

७—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन, धरती आदि पदार्थों के उपार्जन में अपने आत्मिक जीवन के सम्बन्ध में **उदासीन** न हो, और अपने धर्म विषयक साधनों के लिए यथेष्ट समय और ध्यान देने में त्रुटि न करे।

३. व्यवहार

८—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन का अधिपति होकर उसका कभी अपव्यय न करे।

९—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन, धरती आदि पदार्थों पर अधिकार लाभ करके निम्न सुखों में आसक्त होकर अपने आत्मिक जीवन और शारीरिक स्वास्थ्य की हानि न करे।

१०—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पृथ्वी के किसी अनुचित स्थान में मल त्याग करके उस स्थान को भ्रष्ट न करे।

११—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह पृथ्वी के किसी अनुचित स्थान में कूड़ा करकट आदि घृणित वस्तु डालकर उसे दूषित न करे।

१२—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी अनुचित स्थान में गढा आदि खोदकर उसे कुत्सित अथवा औरों के लिए हानिकारक न बनावे।

१३—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी अनुचित क्रिया के द्वारा भौतिक जगत् की किसी वस्तु के रूप रंग वा उसकी पुष्टता आदि को किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे।

१४—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक जगत् की किसी वस्तु का अपव्यवहार न करे।

१५—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक जगत् की जिन २ वस्तुओं की उचित रक्षा के लिए दायी हो, उनकी देख भाल और उनका ठीक समय में और उचित रूप से संशोधन करने वा कराने में त्रुटि न करे।

१६—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह भौतिक जगत् की किसी वस्तु को अनुचित स्थान वा किसी अनुचित सम्बन्ध में रखकर उसे अथवा किसी और वस्तु को किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे।

४. नीच भाव

१७—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन, रत्न, धरती आदि पदार्थों को किसी और से प्राप्त होकर वा उन्हें आप उपार्जन करके अपने हृदय में स्वार्थपरता को वर्द्धन न करे।

१८—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन, धरती आदि पदार्थों को किसी और से पाकर अथवा उन्हें आप उपार्जन करके अपने हृदय में घमंड भाव को उत्पन्न वा वर्द्धन न करे।

१९—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन, रत्न, धरती, घर आदि विविध पदार्थों को किसी और से पाकर

वा उन्हें आप उपार्जन वा निर्माण करके उनके प्रति अपने हृदय में मोह* को उत्पन्न वा वर्द्धन न करे।

२०—भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन, रत्न, धरती, आभूषण आदि पदार्थों को किसी और से पाकर वा उन्हें आप उपार्जन करके उनके सम्बन्ध में अपने हृदय में कृपण भाव को उत्पन्न वा वर्द्धन न करे।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों में यज्ञ कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं:—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को भौतिक जगत् सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता को उनके द्वारा भौतिक जगत् के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त श्री देवगुरु भगवान् से उनकी ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को भौतिक जगत् के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने

* किसी वस्तु के सम्बन्ध में किसी मनुष्य के अनुचित अनुराग वा बन्धन को मोह कहते हैं, कि जो ऐसे अनुरागी को उसका दास बना देता है, और वह उस पर अपना आधिपत्य नही रखता, अर्थात् उसे वह अपनी वा किसी और की भलाई के लिए तो कही रहा, अनेक अवस्थाओ में अपने किसी साधारण शारीरिक अभाव वा रोग के दूर करने के लिए भी काम में लाना नही चाहता और नही ला सकता। इसी लिए यह मोह क्या मनुष्य आत्मा और क्या उसके शरीर दोनो के लिए बहुत हानिकारक है।

पर, उसके दूर करने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

५—इन दिनों में भौतिक यज्ञ विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता के हृदय में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिये।

६—इन दिनों में उपरोक्त संकल्पों में से जो २ शुभ संकल्प पूरे हो सकते हों, उन्हें साधन कर्ता को इन्ही दिनों में पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

७—इन दिनों में भूमि विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, और भौतिक पदार्थों के गुणों और उपकार आदि के विषय में किसी उत्तम पुस्तक वा पुस्तकों का पाठ वा श्रवण करना चाहिए।

८—इन दिनों मे यथा सामर्थ्य किसी पर्वत, समुद्र, झील सरोवर और खनि आदि का दर्शन करना चाहिए।

९—इन दिनों मे अपने २ घरों को, मरम्मन और सफैदी अथवा रंग आदि के द्वारा विशेष रूप से परिष्कार और सुन्दर करना चाहिए।

१०—इन दिनों में अपने घर की सब वस्तुओं की छांट करके टूटी फूटी, बहुत पुरानी और निकम्मी वस्तुओं को निकालकर, दान करना चाहिए।

भौतिक व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को पहले से परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रातः काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का सम्मिलित साधन करना चाहिए :—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खडे होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन ।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित पाठ वा गान ।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धापूर्वक प्रणाम ।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए अशीर्वाद् प्रार्थना ।

(५) यज्ञ सम्बन्धी आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ, अथवा भौतिक जगत् के सम्बन्ध में कोई उपदेश ।

(६) इस यज्ञ के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना मोक्ष वा विकास विषयक जो २ कुछ शुभ साधन किया हो, उस पर चिन्तन, और उस के सम्बन्ध में भौतिक यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश ।

(७) आगामी वर्ष में इस जगत् के सम्बन्ध में अपने आपको और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना ।

(८) महावाक्य का उच्चारण '—
ओं उच्चगति, उच्चगतिः
एकता, एकता, परम एकता ।*

५—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन आहार करना चाहिए ।

---

*परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है ।

६—व्रत के दिन सन्ध्या से कुछ पहले एक और साधन करना चाहिए, जिस में :—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख विनय पूर्वक खड़े होकर बाहर की भौतिक ज्योति की तुलना में उनकी आत्मिक देव ज्योति की विशेषता और महिमा पर संक्षिप्त कथन करके अपने भावों का प्रकाश करना चाहिए।

(२) आरती का गान करना चाहिए।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को विनय पूर्वक प्रणाम करके महा वाक्य* का उच्चारण करना चाहिए।

(४) यथा रुचि अपने २ घरों में परिपाटी के साथ दीप माला करनी चाहिए।

* पिछले पृष्ठ पर नोट देखो।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

मनुष्य मात्र यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

मनुष्य मात्र यज्ञ

मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह मनुष्य मात्र के साथ (चाहे वह किसी देश और जाति के हों) अपने सम्बन्ध को भली भान्त अनुभव करे।

२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने वा मुक्त रखने, और प्रत्येक उच्च गति दायक भाव के उत्पन्न वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।

२. मेल मिलाप

३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी अवस्था के अनुसार जिस २ मनुष्य से जहां तक **हितकर** मेल जोल स्थापन कर सकता हो, वहां तक स्थापन करे।

४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, मुहं हाथ धोकर, बाल संवार के और उचित रूप से परिष्कार वस्त्र पहन के किसी से मिले, वा उस के समीप उपस्थित हो।

५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा सम्भव किसी मनुष्य से केवल उतनी देर तक मिले, जितनी देर तक ऐसा करना उसके लिए उचित वा लाभ दायक हो।

६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जिस मनुष्य के साथ मिलने के लिए जो समय नियत करे, उससे किसी विशेष विघ्न के भिन्न **ठीक उसी समय** में मिले।

३. सन्मान प्रदर्शन

७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जिस मनुष्य से नियम पूर्वक किसी प्रकार की अच्छी विद्या वा शिक्षा लाभ करे, उसके प्रति आवश्यक सन्मान प्रदर्शन करे।

८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के राज्य वा सामाजिक वा धर्म पद के अनुसार उस के प्रति यथावसर उचित वा विधेय सन्मान प्रदर्शन करे।

९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की मानसिक वा हार्दिक वा किसी शिल्प आदि की **योग्यता** के अनुसार उसके प्रति यथावसर उचित वा विधेय सन्मान प्रदर्शन करे।

१०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की **वयस** के अनुसार उसके प्रति यथावसर उचित वा विधेय सन्मान प्रदर्शन करे।

११—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की **परिवारिक वा वंशीय विशेषता** के अनुसार उसके प्रति यथावसर उचित वा विधेय सन्मान प्रदर्शन करे।

१२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की **रोगी वा दुर्बल अवस्था** के अनुसार उसके प्रति यथा अवसर उचित वा विधेय सन्मान प्रदर्शन करे।

४. बात चीत

१३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, प्रत्येक मनुष्य के साथ ऐसे विषयों पर ही बात चीत करे, कि जो दोनों के लिए **प्रीतिकर** और **हितकर** हों।

१४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि

वह किसी विशेष कारण के भिन्न, प्रत्येक मनुष्य के साथ **प्रीतिकर और मधुर** भाषा व्यवहार करे।

१५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, किसी जन के साथ वहीं तक बात चीत करे, जहां तक ऐसा करना उसके लिए **आवश्यक वा लाभ दायक हो।**

१६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उस के लिए जिस मनुष्य से जो कुछ और जितनी बात चीत करनी उचित हो, उसे वह जहां तक सम्भव हो, **संक्षिप्त, स्पष्ट, ठीक २ और सरल भाव** से करे।

१७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह **उचित समय वा अवसर** को देखकर किसी से कुछ बात कहे।

१८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह **उचित समय वा अवसर** देखकर किसी के सामने अपनी किसी **कामना** का प्रकाश करे।

१९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए जिस मनुष्य से जिस बात का **गोपन** रखना उचित और आवश्यक हो, उससे वह उसे गोपन रक्खे।

५. आतिथ्य

२०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह नितान्त आवश्यक होने पर ही किसी मनुष्य के घर में आतिथ्य ग्रहण करे।

२१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के घर में अतिथि बनकर, जहां तक सम्भव हो, उस पर अपनी सेवा वा शुश्रूषा का थोड़े से थोड़ा भार डाले।

२२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि

वह अपने प्रत्येक अतिथि की उसके किसी पद अथवा उसके साथ अपने किसी सम्बन्ध आदि के अनुसार उचित रूप से टहल सेवा करे।

२३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को अपना अतिथि ग्रहण करके, जहां तक उसकी उचित टहल सेवा कर सकता हो, वहां तक उसके **दैनिक अभ्यास** और उसकी **इच्छा** के अनुसार करे।

६. व्यवसाय

२४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में जिस मनुष्य से जो कुछ **उचित** और विधेय **अंगीकार** करे, उसे भली भान्त पालन करे।

२५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में जिस मनुष्य को जो कुछ **देना** उचित हो, उसे **ठीक समय** में दे।

२६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में जिस मनुष्य को जो कुछ **देना** उचित हो, उसे वह **ठीक मात्रा** में दे।

२७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में जिस मनुष्य को जो कुछ **देना** उचित हो, उसे वह **ठीक अवस्था** में दे।

२८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में जिस मनुष्य को **जितना समय** देना आवश्यक हो, उसके लिए वह **उतना समय** दे।

२९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में जिस मनुष्य के प्रति जितना **काम अथवा परिश्रम** करना आवश्यक वा विधेय हो, उसके लिए वह **उतना काम** अथवा उतना **परिश्रम** करे।

३०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में जिस मनुष्य के प्रति **जितना ध्यान** देना आवश्यक हो, उसके लिए वह **उतना ध्यान** दे।

७. विश्वस्तता

३१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, किसी मनुष्य की आप भली भान्त परीक्षा करके वा उसके सम्बन्ध में किसी विश्वस्त जन से साक्षी पा कर उसके प्रति किसी विषय में अपना विश्वास स्थापन करे।

३२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जिस मनुष्य का किसी विषय में उचित रूप से **विश्वास पात्र** बना हो, उसमें अपने आप को सदा **सच्चा** प्रमाणित करे।

८. संग

३३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, उच्चजीवन-प्राप्त अथवा सच्चरित्र लोगों का संग करे।

३४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, उच्च भावापन्न, सुनीति समर्थक, अच्छे लेखकों की पुस्तकों वा उनके अन्य लेखों का पाठ करे।

९. उधार वा धरोहर

३५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से कोई वस्तु मंगाकर वा उधार लेकर अथवा किसी मनुष्य की किसी वस्तु को अपने पास धरोहर रखकर **उसे ठीक समय** में **लौटा** दे

१०. अङ्गीकार

३६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि

वह किसी मनुष्य से जब और जो कुछ उचित और विधेय अङ्गीकार करे, उसे जहां तक सम्भव हो, पूरा करे।

११. दायित्व रक्षा

३७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी के सम्बन्ध में जिस किसी काम के लिए दायी बना वा समझा गया हो, उसे किसी बहुत बड़े विघ्न के भिन्न ठीक समय से पहले वा ठीक समय तक और उत्तम रूप से पूरा करे।

१२. शिक्षा

३८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जिस मनुष्य से कोई शिक्षा अथवा विद्या लाभ करता हो, उसके विषय के प्रति आवश्यक रूप से ध्यान दे।

३९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जिस मनुष्य से जो बात सीखे, वह किसी शुभ उद्देश से सीखे।

४०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी योग्यता के अनुसार यथा सम्भव जिस किसी अधिकारी मनुष्य को जो कोई सद्विद्या वा सद्गुण सिखा सकता हो, उसे प्रीति पर्वक सिखा दे।

१३. ग्रहण वा अनुकरण

४१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जिस जाति वा जन में जो २ उत्तम गुण विद्यमान हों, उनसे अवगत होने पर, यथा आवश्यक और यथा साध्य लाभ उठावे।

४२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, किसी जाति वा जन की केवल उसी बात का अनुकरण करे, कि जो उसके लिए हितकर और उसकी अवस्था के अनुकूल हो।

१४. त्याग

४३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह **अपने धर्म** अर्थात **उच्च जीवन की रक्षा के लिए** ऐसे प्रत्येक जन से अपना **सम्बन्ध काट ले**, कि जो उसे उस से भ्रष्ट वा पतित करने की चेष्टा करता हो।

४४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह **अधिकांश जनों** के उचित लाभ वा आराम के लिए **अपने** उचित लाभ वा आराम को यथावश्यक **त्याग वा अर्पण** करे।

४५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह

(अ) अपनी समाज,

(इ) अपनी जाति,

(उ) अपने देश, और

(ए) अपने किसी बहु-देश-संयुक्त राष्ट्र के मुख्य हित के लिए अपने, और अपने पारिवारिक जनों के गौण सुख वा लाभ को **अर्पण वा त्याग** करे।

१५. बाध्यता

४६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी **सुयोग्य** जन से चिकित्सा कराने पर, किसी विशेष कारण के भिन्न, जहां तक सम्भव हो, उसकी व्यवस्था को पूर्ण रूप से पालन करे।

४७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी विधेय वा हितकर सभा वा समाज में योग देकर, उसके शुभ नियमों का भली भान्त पालन करे।

४८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह प्रत्येक मनुष्य के साथ अपने वर्ताव में उचित **राज्य विधि** की भली भान्त रक्षा करे।

४६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह प्रत्येक मनुष्य के निज के सच्चे अधिकार की पूर्ण रूप से रक्षा करे ।

५०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए जिस किसी मनुष्य की किसी बात का उत्तर देना वा उसे कुछ बताना वा कहना वा उस तक किसी का सन्देशा पहुंचाना आवश्यक वा उचित हो, उसे वह उचित वा ठीक समय में पूरा करे ।

५१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जिस मनुष्य से कोई अच्छी विद्या वा शिक्षा लाभ करता हो, उस विषय में उसकी प्रत्येक उचित आज्ञा को भली भान्त पालन करे ।

१६. शान्ति

५२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में शान्ति चाहे, और जहां तक सम्भव हो, उनमें से कलह, विवाद और युद्ध के मिटाने और शान्ति के स्थापन करने में सहायक बने ।

५३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने आपको जहां तक सम्भव हो, मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में वृथा वाक्‌विवाद और कलह आदि से दूर रक्खे ।

१७. क्षमा

५४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने सम्बन्ध में उचित सीमा तक, प्रत्येक मनुष्य के दोषों वा अपराधों को क्षमा करे ।

१८. अनुग्रहीतता

५५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से कुछ भी उपकार पाकर उसके लिए अपने भीतर अनुग्रहीतता के भाव को अनुभव और उसे यथा अवसर उचित रूप से प्रकाश करे ।

१६. भ्रान्ति संशोधन

५६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जब अपनी किसी ना समझी वा भ्रान्ति के कारण किसी मनुष्य के साथ किसी प्रकार का अनमेल वा असद्भाव उत्पन्न करले, तब उस से अवगत होकर वह, जहां तक सम्भव हो, उसे उचित रूप से शीघ्र दूर करने की चेष्टा करे।

२०. अपक्षपात

५७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह सदा पक्षपात रहित होकर किसी मनुष्य के विषय में कोई विचार वा आलोचना करे।

५८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह सदा पक्षपात रहित होकर किसी के सम्बन्ध में अपना कोई मत वा मंतव्य प्रकाश करे।

५६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी जन, समाज, सम्प्रदाय, वा जाति के ज्ञान वा आचरण आदि में जो २ कुछ सत्य वा शुभ हो, उसे यथावश्यक पक्षपात रहित होकर समर्थन करे।

६०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी जन, समाज, सम्प्रदाय वा जाति के विषय में जो कुछ अवगति रखता हो, उसे आवश्यक होने वा समझने पर किसी और के सन्मुख ठीक २ और निष्कपट रूप से वर्णन वा समर्थन करे।

२१. उपहार

६१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को केवल ऐसी ही वस्तुएं उपहार दे, कि जिनका देना उचित हो, और जिन्हें पाकर वह प्रसन्न हो।

२२. दान

६२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी को सुपात्र अर्थात् अधिकारी जानकर ही उसे कोई वस्तु दान करे।

६३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी अधिकारी जन को केवल ऐसी ही वस्तुएं दान करे कि जिनका दान करना उचित और विधेय हो।

६४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी अधिकारी जन को ऐसी ही वस्तुएं दान करे, कि जो उसके लिए आवश्यक अथवा उपयोगी हों।

६५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी अधिकारी जन को जो कुछ दान करे, वह अभिमान रहित होकर शुभ और नम्रभाव से करे।

२३. सहाय और सेवा

६६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी दरिद्र, निराश्रय, अनाथ, दुर्बल, पीडित, विद्याहीन, गुण हीन और धर्म हीन मनुष्य के कल्याण के लिए, यथावसर और अपनी योग्यता के अनुसार, जब और जो कुछ सहाय वा सेवा कर सकता हो, वह करे।

६७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को किसी शुभ अभिप्राय में यत्न करते देखकर, जहां तक संभव हो, उसे उत्साहित करे।

६८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को उचित आश्रय देकर उचित रूप से उसकी रक्षा करे।

६९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे मनुष्य की भूली वा खोई हुई वस्तु को पाकर जिसे वह

जानता अथवा जान सकता हो, जहां तक शीघ्र सम्भव हो **उसके पास** पहुंचा दे।

७०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के घर वा स्थान में आग के लग जाने पर, अथवा किसी मनुष्य के किसी भार के नीचे दब जाने पर, अथवा किसी मनुष्य के जल में डूबने पर, अथवा किसी मनुष्य के किसी अन्य प्रकार के संकट मे पड़ जाने पर, अवसर और अपनी योग्यता के अनुसार जो कुछ **उचित सहाय** कर सकता हो, वह करे।

७१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी जाति वा देश वा प्रदेश के लोगों में किसी साधारण रोग वा महामारी वा किसी विपद् वा संकट के आक्रमण करने पर, उसकी निवृत्ति में **अपनी मंगल कामनाओं के द्वारा**, जहां तक सहाय कर सकता हो, वहां तक सहाय करे।

२४. परिशोध

७२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसे जब किसी मनुष्य के सम्बन्ध में अपने किसी अपराध वा पाप का बोध हो, तभी वह उसके लिए उचित रूप से **परिशोध** करके अपने हृदय को पवित्र करने की चेष्टा करे।

वर्जित कर्म

१. अनुचित मेल मिलाप

१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे मनुष्य से न मिले, कि जिस से मिलने से उसे अपने लिए किसी उचित लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक सम्भावना हो।

२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे मनुष्य से न मिले, कि जिस से मिलकर उसके द्वारा उसे अकारण अपने अपमानित वा अनादृत होने की सम्भावना हो।

३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के साथ मिलने के लिए जो समय नियत करे, उस में बिना किसी उचित और यथेष्ट कारण के कभी विलम्ब न करे।

४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उचित कारण के बिना किसी दुर्जन अथवा बुरे मनुष्य से न मिले, और न उसके साथ रहे।

२. अनुचित बात चीत

५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के साथ बृथा बात चीत न करे।

६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के साथ बात चीत करने में उस से कोई ऐसी बात न पूछे अथवा पूछ लेने पर उत्तर के लिए आग्रह न करे, कि जिस का बतलाना वह आवश्यक वा उचित न समझता हो*।

७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को क्या उसके पूछने पर और क्या अपनी ओर से कोई ऐसी बात न बतलाए, कि जिसका बतलाना उसे उचित बोध न हो †।

८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए किसी मनुष्य के साथ बात चीत के समय में जितना ध्यान देना आवश्यक हो, उसकी ओर से उदासीन न हो।

९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से बात चीत करने के समय अपनी बात को अनावश्यक रूप से लम्बा न करे।

---

* ऐसे अवसर मे किसी के पूछ बैठने पर नम्रता से यह कह देना यथेष्ट है, कि मैं इस विषय मे कुछ कहना वा बतलाना वा उत्तर देना आवश्यक अथवा उचित नही समझता, आप क्षमा करे।

† किसी विधेय विचारालय मे किसी अपराध के विचार के समय इस आदेश का प्रयोग न होगा।

१०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए जिस किसी मनुष्य से जिस समय **बोलना उचित** हो, उस समय वह चुप न रहे।

११—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए जिस मनुष्य के सामने जिस समय **चुप रहना** उचित हो, उस समय कुछ न **बोले**।

१२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए जिस २ मनुष्य से जिस २ बात का **गोपन** रखना उचित बोध हो, उसे उन पर **प्रकाश** न करे।

१३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के कुछ पूछने पर उत्तर देने में **वृथा देरी न** करे।

१४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के साथ बात चीत करने के समय उसकी किसी बात को **अनुचित रूप से न काटे**।

१५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह बिना किसी विशेष और उचित कारण के अन्य लोगों की किसी निज की वा गोपनीय बात चीत को छिपकर न सुने।

३. अनुचित कामना

१६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से किसी **अनुचित सन्मान** के लाभ करने की **कामना** अथवा **चेष्टा** न करे।

१७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से किसी **अनुचित उपाधि** के लाभ करने की **कामना** अथवा **चेष्टा** न करे।

१८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि

वह किसी मनुष्य से **अनुचित पद** के लाभ करने की **कामना** अथवा **चेष्टा** न करे।

१६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से किसी **अनुचित प्रशंसा** वा **प्रशंसा** वा **अनुरोध पत्र** के लाभ करने की **कामना** वा **चेष्टा** न करे।

२०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य का अतिथि बन कर उस से कोई ऐसी वस्तु न चाहे, जिसे उसका आतिथ्यदाता **सुविधा** और **सुगमता** अथवा किसी और कारण से दे न सकता हो।

२१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से कोई ऐसी **कामना** न करे, कि जिसे वह अपनी अवस्था वा योग्यता के अनुसार पूरा न कर सकता हो।

२२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी की किसी ऐसी कामना को पूरा न करे, कि जिसे वह **अनुचित** वा **पाप मूलक** जानता हो।

४. अपहरण

२३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की किसी वस्तु को चोरी, ठगी, (प्रवंचना) बटमारी औद डकैती आदि किसी क्रिया के द्वारा अपहरण न करे।

२४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की किसी **धरोहर** को **दबाकर** उसे किसी प्रकार की **अनुचित हानि** न पहुंचावे।

२५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपनी किसी अनुचित क्रिया के द्वारा किसी मनुष्य को उसके उचित **पद** से वंचित न करे।

२६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को बेच देने वा दास बनाने वा किसी अनुचित वा अविधेय कर्म के लिए कभी हरण वा ग्रहण न करे।

२७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने वा अपने अधीनस्थ किसी लड़के वा लड़की को किसी के पास न बेचे और न किसी और से किसी ऐसे लड़के वा लड़की को मोल ले।

२८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह धन, धरती वा कोई और पदार्थ लेकर उसके बदले में अपनी कन्या वा अपने पुत्र का किसी के साथ विवाह न करे।

२९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की उचित स्वाधीनता को अपहरण करके उसे कोई हानि न पहुंचावे।

३०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी समुचित और विधेय कारण के बिना किसी मनुष्य को कभी वध न करे।

५. पक्ष ग्रहण

३१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने से भिन्न रंग रूप, वा किसी अन्य सम्प्रदाय, समाज, जाति और देश आदि से सम्बन्ध रखने के कारण किसी मनुष्य के प्रति अपने हृदय में कोई घृणा पोषण न करे।

३२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह विचार पति होकर अन्याय के द्वारा किसी मनुष्य को कोई क्लेश वा हानि न पहुंचावे।

३३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के विरुद्ध कोई मिथ्या साक्षी न दे।

३४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने से भिन्न, रंग वा जाति वा देश वा मत वा सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने के कारण किसी जन के साथ अभद्रता वा अन्याय का व्यवहार न करे।

६. अनुचित भय

३५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी से कोई भय वा उत्पीड़न प्राप्त होकर अपने किसी हितकर कार्य वा उच्च लक्ष्य को परित्याग न करे।

३६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के द्वारा उत्पीड़ित होकर अपने आत्मा की उच्च गति को परित्याग न करे।

३७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी और से अपने लिए किसी भय वा विपद की आशंका से घबरा कर अपनी वा किसी और की कोई अनुचित हानि न करे।

३८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को किसी प्रकार से डराकर उसे कोई अनुचित क्लेश वा हानि न पहुंचावे।

७. अनुचित मैथुन

३९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उचित रूप से विवाह करने के बिना किसी के साथ किसी प्रकार का कोई मैथुन कर्म न करे।

४०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य वा पशु के साथ किसी प्रकार का अप्राकृतिक मैथुन न करे।

४१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि

वह अपने वैवाहिक सम्बन्धी के भिन्न किसी अन्य जन मैथुन विषयक कोई चिन्ता वा भाव धारण न करे।

८. अनुचित खान पान

४२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जहां तक सम्भव हो, मैले, रोगी, दुष्ट और दुराचारी मनुष्य के हाथ की बनाई वा लाई हुई कोई वस्तु न खावे और न पीवे।

४३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को निमन्त्रित करके उसे जान बूझकर कोई हानिकारक वा उस की उचित आवश्यकता वा रुचि के विरुद्ध कोई वस्तु खा और पीने के लिए न दे।

९. अनुचित व्याघात

४४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को अतिथि बना कर उसकी दैनिक यात्रा (अर्थात् उसके खाने, पीने, सोने, जागने, मल आदि त्याग करने, किसी से मिलने जुलने, काम काज करने आदि) में कोई अनुचित व्याघात न डाले।

१०. अनुचित अनुकरण

४५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे मनुष्य की रहन, सहन, चाल, ढाल, प्रथा वा रीति का अनुकरण न करे, कि जो उसके लिए हानिकारक हो।

११. अनुचति हस्तक्षेप

४६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी की साक्षात् वा असाक्षात् अनुमति वा किसी राज्य विधि के अनुसार कोई उचित अधिकार रखने के बिना, उसके निज के घर वा प्रकोष्ठ में प्रवेश न करे।

४७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी की साक्षात् वा असाक्षात् अनुमति वा किसी राज्य विधि के

अनुसार कोई उचित अधिकार रखने के बिना, किसी के शरीर वा उसकी किसी गति वा उसकी निज की किसी वस्तु के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप न करे।

४८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी की साक्षात् वा असाक्षात् अनुमति वा किसी राज्य विधि के अनुसार कोई उचित अधिकार रखने के बिना, किसी के किसी निज के काम में कोई हस्तक्षेप वा बाधा उत्पन्न न करे।

१२. अनुचित प्रशंसा

४९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह जान बूझकर किसी मनुष्य की कोई अनुचित वा मिथ्या प्रशंसा न करे।

१३. अनुचित विलम्ब

५०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसे जिस समय जिस किसी मनुष्य के लिए कोई काम करना उचित हो, उसके करने में वह यथा साध्य विलम्ब न करे।

५१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसे जिस समय जिस किसी मनुष्य को जो कुछ देना उचित हो, उसके देने में यथा साध्य विलम्ब न करे।

५२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसे जिस समय किसी मनुष्य की किसी बात वा उसके किसी पत्र का उत्तर देना उचित हो, उसके देने मे यथा साध्य विलम्ब न करे।

१४. अनुचित खेल वा कौतुक

५३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के साथ जुआ न खेले* ।

* जिसमे रुपए, पैसे, कौडियो आदि की हार जीत का सम्बन्ध हो।

५४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह केवल कौतुक के लिए कोई ऐसा खेल वा तमाशा न करे, और न कराए और न देखे और न अपने (उचित रूप से) अधीनस्थ जनों को देखने दे, कि जो उसके वा किसी और के सच्चरित्र के लिए हानिकारक हो।

१५. अनुचित भूल

५५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी जन के सम्बन्ध में अपने **किसी कर्त्तव्य कर्म** को **भूल** न जावे।

१६. अनुचित संकोच

५६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी अधिकारी मनुष्य के चाहने पर, उसे किसी विद्या वा गुण वा धर्म विषयक किसी शिक्षा के देने में **अनुचित संकोच** न करे।

५७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह यथा अवसर किसी मनुष्य वा जाति की (अपने ज्ञान के अनुसार) उचित और पूर्ण प्रशंसा करने में कोई **संकोच** न करे।

१७. अनुचित भाव प्रकाश

५८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए जब किसी मनुष्य के सन्मुख गम्भीर भाव धारण करना उचित हो, तब वह अपनी ओर से किसी लघुता का प्रकाश न करे।

५९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के सन्मुख हर्ष के समय किसी अनुचित दुख और दुख के समय किसी अनुचित हर्ष का प्रकाश न करे।

१८. अनुचित पाठ

६०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की रची हुई कोई ऐसी पुस्तक न पढ़े और न किसी

अन्य जन को पढ़ने के लिए दे, कि जिस से उसके वा अन्य के सच्चरित्र वा सच्चे विश्वास को कोई हानि पहुंच सकती हो।

६१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उचित और विधेय कारण के भिन्न, किसी मनुष्य के पत्र वा लेख को उसकी साक्षात् वा असाक्षात् अनुमति के बिना न पढ़े।

१९. अनुचित लेख

६२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को कोई ऐसी बात न लिखे और न लिखवा कर भेजे, कि जिससे उसके वा किसी और के सद्भाव वा सच्चरित्र को कोई अनुचित हानि पहुंचे।

२०. अनुचित व्यवहार

६३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को जान बूझकर कोई ऐसी वस्तु न दे, कि जिसे वह किसी अपराध वा बुरे अभिप्राय के पूरा करने के लिए चाहता हो।

६४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी परिचित मनुष्य की भी किसी वस्तु को, जहां तक अवस्था के अनुसार सम्भव हो, बिना पूछे अथवा उसके विषय में उसे उचित सूचना देने के बिना अपने वा किसी और के लिए काम में न लावे।

६५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की किसी वस्तु को जान बूझकर वा अपनी असावधानता से बिगाड़ कर उसे कोई अनुचित कष्ट वा हानि न पहुंचावे।

२१. अनुचित कथन

६६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की किसी ऐसी गोपनीय बात को प्रकाश न करे, कि जिसके प्रकाश करने से उस मनुष्य को कोई अनुचित हानि पहुंच सकती हो।

६७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी उचित कारण के बिना किसी मनुष्य के किसी दोष को किसी और मनुष्य के सन्मुख वर्णन न करे।

६८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी रोगी मनुष्य के समीप (किसी नितान्त आवश्यकता के भिन्न) उसके रोग के विषय में कोई निराशा-जनक अथवा हानिकारक बात चीत न करे।

६९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि उसके लिए जिस २ मनुष्य से जिस २ वस्तु को गोपन रखना उचित हो, उसे प्रकाश न करे।

२२. अनुचित याचना

७०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी ऐसे काम के लिए कि जो किसी मनुष्य की अनुग्रह याचना करने के बिना किसी और प्रकार से हो सकता हो, किसी मनुष्य से, जहां तक सम्भव हो, अनुग्रह प्रार्थना न करे।

२३. अनुचित दान

७१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अधिकारी मनुष्यों के भिन्न किसी अनाधिकारी मनुष्य को कोई वस्तु दान न करे।

२४. अनुचित प्रलोभन

७२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की ओर से किसी धन, धरती वा किसी पादर्थ के अर्पण करने पर उसके लालच में पड़कर अपने आत्मा की धर्म विषयक किसी उच्च गति को परित्याग न करे।

७३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि

वह नाम वा बड़ाई वा सुख आदि किसी वासना का साथी बनकर धर्म विषयक अपनी किसी उच्च गति को **परित्याग** न करे।

२५. अनुचित रोक

७४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की उच्च गति में **रोक** बनकर, उसे किसी प्राकर की हानि न पहुंचावे।

७५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के **निज** के किसी सच्चे अधिकार में किसी प्रकार का **हस्तक्षेप** न करे।

२६. अनुचित वास

७६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के पास आवश्यकता से अधिक ठहरकर उसे कोई क्लेश वा हानि न पहुंचावे।

२७. अनुचित वाक्य

७७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह बिना उचित कारण के किसी मनुष्य को अपने किसी **कठोर वा कर्कश वाक्य** के द्वारा कोई क्लेश न पहुंचावे।

२८. अनुचित परिहास

७८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के साथ कोई **अनुचित परिहास** करके उसे कोई क्लेश वा हानि न पहुंचावे।

२९. अनुचित अंग परिचालन

७९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के सामने अपने किसी अंग को अनुचित रूप से स्पर्श वा परिचालन न करे।

३०. अनुचित अभियोग और अपवाद्

८०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य पर कोई **मिथ्या अभियोग** लगाकर उसे किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे।

८१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के विषय में कोई **मिथ्या अपवाद्** रटना करके उसे किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे।

३१. अनुचित अंगीकार भंग

८२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी उचित और यथेष्ट कारण के बिना किसी मनुष्य के साथ अपने किसी उचित और विधेय अंगीकार को **भंग** करके उसे कभी कोई क्लेश वा हानि न पहुंचावे।

३२. अनुचित अनुराग (मोह)

८३—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य के प्रति अनुचित अनुराग अथवा **मोह** उत्पन्न करके अपने वा उसके लिए हानिकारक न बने।

३३. अनुचित दंड

८४—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य पर अधिकार रखने और उचित बोध करने पर, उसे किसी दोष वा अपराध के लिए जान बूझकर, उचित से अधिक **दंड** न दे।

३४. अनुचित अभिसन्धि

८५—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी यथेष्ट प्रमाण के बिना किसी मनुष्य के किसी कार्य व व्यवहार के विषय में कोई **दुरभिसन्धि** प्रयोग न करे।

३५. अनुचित कौतूहल

८६—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी कौतूहल के वश होकर किसी मनुष्य को किसी प्रकार का अनुचित क्लेश वा उसे किसी प्रकार की अनुचित हानि न पहुंचावे।

३६. अनुचित लालसा

८७—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की ओर से किसी मनुष्य को उचित रूप से कोई वस्तु दान वा उपहार पाते देखकर अप्रसन्न न हो, और अपने हृदय में इस प्रकार की चिन्ता करके कि "वह वस्तु इसे क्यों दी गई और मुझे क्यों न दी गई" दुखी न हो।

३७. धृष्टता

८८—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य को अपनी किसी धृष्टता के द्वारा किसी प्रकार का अनुचित क्लेश न पहुंचावे।

३८. कृतघ्नता

८९—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह अपने किसी हितकारी मनुष्य के प्रति कभी कृतघ्नता का वर्ताव न करे।

३९. प्रतिशोध

९०—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से अपनी किसी ऐसी कामना के पूर्ण न होने पर, कि जिसके पूर्ण करने के लिए वह बाध्य न हो, प्रतिशोध भाव से उत्तेजित न हो।

९१—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य से अपनी किसी कामना के पूर्ण न होने पर, प्रतिशोध भाव से परिचालित होकर उसे वा अपने आपको कोई अनुचित हानि न पहुंचावे।

४०. ईर्षा

६२—मनुष्य मात्र यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह किसी मनुष्य की किसी विषय में किसी सच्ची प्रशंसा को सुनकर अथवा किसी की अपेक्षा अपने आपको किसी विषय में हीन देखकर, दुखी न हो, और उसे कोई हानि न पहुंचावे।

वार्षिक यज्ञ

वार्षिक यज्ञ के दिनों मे यज्ञ कर्ता के लिए जिन २ साधनों का करना विशेष रूप से आवश्यक है, वह यह हैं :—

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को मनुष्य जगत् सम्बन्धी आदेशों का विचार के साथ पाठ अथवा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में उपरोक्त आदेशों के पाठ और उन पर विचार करने से पहले यज्ञ साधन कर्ता को उनके द्वारा मनुष्य जगत् के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के देखने के निमित्त, श्री देवगुरु भगवान् से उनकी ज्योति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३—श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर यज्ञ साधन कर्ता ने पूर्वोक्त आदेशों में से जिन २ के पालन करने की योग्यता लाभ की हो, उन्हें इन दिनों में अपने सन्मुख लाकर उनके प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश करना चाहिए।

४—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को किसी मनुष्य के सम्बन्ध में अपनी किसी हीनता वा नीचता के विषय में बोध प्राप्त करने पर, उसके दूर होने के निमित्त अपनी ओर से बल प्रयोग करने के भिन्न, यथावश्यक श्री देवगुरु भगवान् से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थन करनी चाहिए।

५—इन दिनों में मनुष्य मात्र यज्ञ विषयक आदेशों के साथ अपने जीवन की तुलना के अनन्तर यज्ञ साधन कर्ता के हृदय में जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न हों, उन्हें अपनी साधन पुस्तक में लिखना चाहिए।

६—इन दिनों में उपरोक्त संकल्पों में से जो २ शुभ संकल्प पूरे हो सकते हों, उन्हें यज्ञ साधन कर्ता को इन्ही दिनों मे. पूरा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

७—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को पृथ्वी के विशेष २ सच्चरित्र और परोपकारी जनों के जीवन चरितों का विचार पूर्वक पाठ वा योग्यता रखने पर उनके किसी उच्च चरित्र के विषय में कथन करना वा व्याख्यान देना चाहिए।

८—इन दिनों में यथा सम्भव और यथा साध्य यज्ञ साधन कर्ता को विशेष २ लोक हितैषी अथवा किसी अच्छे विषय में सुख्याति-प्राप्त जनों का दर्शन अथवा उनके साथ आलाप करना चाहिए।

मनुष्य मात्र व्रत

१—व्रत साधन के लिए अपने साधनालय अथवा किसी अन्य स्थान को पहले से परिष्कृत और सुसज्जित करना चाहिए।

२—व्रत के दिन जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रातः काल में ही व्रत का साधन करना चाहिए।

३—व्रत के दिन अपने शरीर को शुद्ध करके और उजले वस्त्र पहन कर साधन के लिए बैठना चाहिए।

४—व्रत के दिन नीचे लिखी हुई विधि के अनुसार व्रत का सम्मिलित साधन करना चाहिए :—

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के सन्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन।

(२) देवस्तोत्र का उच्च स्वर के साथ सम्मिलित गान।

(३) श्री देवगुरु भगवान् को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम।

(४) श्री देवगुरु भगवान् से व्रत की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना।

(५) यज्ञ सम्बन्धी सब वा कुछ आदेशों का एकाग्रता के साथ धीरे २ पाठ वा श्रवण अथवा मनुष्य जगत् के सम्बन्ध में कोई उपदेश।

(६) इस यज्ञ के साधन से प्रत्येक साधन कर्ता ने अपना जो २ कुछ मोक्ष वा विकास विषयक शुभ साधन किया हो, उस पर चिन्तन और यज्ञ स्थापन कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति धन्यवाद आदि भावों का प्रकाश।

(७) आगामी वर्ष में मनुष्य जगत् के सम्बन्ध में अपने आपको और भी विकार रहित और हितकर बनाने के निमित्त आकांक्षा और आशीर्वाद प्रार्थना।

(८) महा वाक्य का उच्चारण :—
ओं उच्च गति, उच्च गति,
एकता, एकता, परम एकता।*

५—व्रत के दिन और दिनों की अपेक्षा उत्तम भोजन आहार करना चाहिए।

६—व्रत के दिन किसी उचित समय में मनुष्य जगत् के विशेष २ हितकारी महा पुरुषों के जीवन चरितों में से कुछ पाठ अथवा उनकी जीवन कथाओं का वर्णन वा श्रवण अथवा उनके प्रति भाव प्रकाश करना चाहिए।

*परम पूज्य भगवान् देवात्मा ने ही पीछे से इस महावाक्य को छोडकर इसके स्थान में "भगवान् देवात्मा की जय" चार बार उच्चारण करने की आज्ञा दी है।

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

श्री देवगुरु यज्ञ अथवा महा यज्ञ

मनुष्य जगत् सम्बन्धी

श्री देवगुरु यज्ञ अथवा महा यज्ञ

श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में आदेश

१. सम्बन्ध बोध

१—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवजीवनप्राप्त श्री देवगुरु भगवान् को **अपने आत्मा के रूप और उसके जीवन के विषय में** सब प्रकार के **अज्ञान विषयक अन्धकार से मोक्ष** और सत्य ज्ञान प्रदर्शक पूर्ण **देव ज्योति दाता** और **अन्धकार हर्ता** जान कर, उन्हें इस विषय में अपना **परम शिक्षक, परम गुरु, परम नेता** वा **जीवन पथ दर्शक** और अपने आप को उनका **शिक्षार्थी शिष्य, अनुगत** और उन की देव ज्योति का **भिक्षार्थी** उपलब्ध करे।

२—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवजीवनप्राप्त श्री देवगुरु भगवान् को **अपने आत्मा की सब प्रकार की नीच गतियों से मोक्ष के लिए सत्य और पूर्ण मोक्ष दाता** और अपने आप को उन के सम्बन्ध में **मुमुक्षु वा परित्राणार्थी** जाने और उपलब्ध करे।

३—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवजीवनप्राप्त श्री देवगुरु भगवान् को **अपने आत्मा में सब प्रकार की उच्च गतियों के विकास के लिए सत्य और पूर्ण विकास कर्ता** और अपने आप को उन के सम्बन्ध में **विकासार्थी** जाने और उपलब्ध करे।

४—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह देवजीवनप्राप्त श्री देवगुरु भगवान् के देव ज्योति और देव तेज सम्पन्न **देव प्रभावों** को अपनी सच्ची **आत्मिक पूजा** के द्वारा लाभ करने की आवश्यकता को अनुभव करके, उन्हें अपना **सत्य और पूर्ण उपास्य वा परम पूजनीय और परम आदर्श** और अपने आपको उनका **उपासक और अनुगामी** जाने और उपलब्ध करे।

२. श्री देवगुरु भगवान् के जीवनप्रद देव प्रभाव और उनके लाभ करने की आवश्यकता

५—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इन सत्यों को भली भान्त जाने और उनका पूर्ण विश्वासी बने कि वह देव जीवन प्राप्त श्री देवगुरु भगवान् के **जीवनप्रद वा उच्च परिवर्तनकारी देव प्रभावों** को **पाकर** और उनके **ग्रहण करने के योग्य होकर**

(१) अपने आत्मा और उसकी गतियों और उनके फलों और अपने आत्मिक जीवन की रक्षा और उस के विकास के साधनों आदि के विषय में **सत्य ज्ञान** के लाभ करने की **आवश्यकता** और उसकी **महिमा** को **देख** वा **उपलब्ध** और उसके लाभ करने के लिए अपने हृदय मे **प्रेरणा** वा **आकांक्षा** और उसे अपनी योग्यता के अनुसार **लाभ कर सकता है,**

(२) अपने आत्मा के रूप और जीवन के विषय में किसी हानिकारक मिथ्या ज्ञान वा संस्कार वा विश्वास को मिथ्या रूप में देख वा उपलब्ध और उससे मोक्ष पाने के निमित्त अपने हृदय मे **प्रेरणा वा आकांक्षा** वा उससे आंशिक वा पूर्ण, कुछ काल वा सारी वयस के लिए, **मोक्ष** लाभ **कर सकता है;**

(३) अपने आत्मा में अपने किसी नीच गतिदायक और महा हानिकारक वा विनाशकारी भाव और उस के विकारों को **देख** वा **उपलब्ध** और उन से **मोक्ष** पाने के लिए **प्रेरणा वा आकांक्षा** वा उस नीच गति से आंशिक वा पूर्ण, कुछ काल वा सारी वयस के लिए, **मोक्ष** लाभ कर सकता **है;**

(४) अपने आत्मा में किसी उच्च-गतिदायक वा विकासकारी सात्विक भाव के लाभ करने की आवश्यकता को **देख**

वा उपलब्ध और उस के लाभ करने के लिए अपने हृदय में प्रेरणा वा आकांक्षा और उसे आंशिक वा पूर्ण रूप से, कुछ काल वा सारी वयस के लिए, उत्पन्न वा उन्नत कर सकता है, और इन परम कल्याणकारी देव प्रभावों को पाकर और ग्रहण करके अपने अस्तित्व का परम हित लाभ कर सकता है।

६—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि जिस प्रकार उसे अपने भौतिक शरीर के जीवित रखने के लिए अन्न, जल और वायु आदि ग्रहण करने और मल मूत्र आदि जो २ कुछ उसके जीवन के लिए हानिकारक है, उसके त्याग करने की आवश्यकता है, उसी प्रकार उसे अपने आत्मा को, जहां तक सम्भव हो, जीवन दायक उच्च भावों में विकसित करने और जीवन नाशक नीच गतियों से मोक्ष देने के लिए देव जीवन प्राप्त श्री देवगुरु भगवान् के जीवनप्रद देव प्रभावों को ग्रहण और जो २ भाव जहां तक उनके ग्रहण करने में प्रतिबन्धक वा उसके आत्मिक जीवन के लिए हानिकारक हों, उनके वहां तक त्याग करने की आवश्यकता है।

७—महा यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि उसके लिए श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों के लाभ से बढकर और कोई लाभ वा और कोई सौभाग्य नहीं, और उनके देव प्रभावों से वंचित होने से बढकर और कोई हानि वा और कोई दुर्भाग्य नहीं।

८—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों के लाभ करने की कुछ भी योग्यता रखने पर अपने किसी नीच भाव का साथी बन कर और अपने आत्मा और उसके जीवन के सम्बन्ध में उनकी उच्च वा शुभ पथ दर्शक देव ज्योति और नीच गति विनाशक और उच्च गति

विकासक किसी प्रेरणा शक्ति का निरादर कर के अपने आत्मा की हानि न करे, किन्तु उनका पूर्ण आदर कर के और उनका पूर्ण साथ देकर प्रत्येक आवश्यक त्याग के द्वारा उन्हें अपने प्रत्येक नीच गति दायक भाव पर सदा विजयी करने की चेष्टा करे।

३. देव प्रभावों की प्राप्ति की पहचान

९—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों के ग्रहण करने के योग्य बनने से, उसके वा किसी और के आत्मा में, जहां तक सम्भव हो, और कई अनुचित भावों के भिन्न, निम्न लिखित अनुचित भावों में से किसी एक वा कई के प्रति अल्प वा अधिक घृणा का उत्पन्न होना, और उसके वा उनके अधिकार और विकार से--आंशिक वा पूर्ण मोक्ष पाना वा मोक्ष पाने के लिए प्रेरणा लाभ करना अवश्यम्भावी है :—

(१) अनुचित अभिमान अथवा घमंड भाव।
(२) अनुचित गौरव अथवा ईर्षा भाव।
(३) अनुचित परदोष प्रगटन भाव।
(४) अनुचित स्वार्थ भाव।
(५) अनुचित पक्ष ग्रहण भाव।
(६) अनुचित विश्वास भाव।
(७) अनुचित स्वाधीन भाव।
(८) अनुचित बन्धन भाव।

और यदि इन में से किसी के सम्बन्ध में उस मे मोक्ष विषयक कोई लक्षण उत्पन्न न हो, तो समझना चाहिए कि वह उनके देव प्रभावों के लाभ करने के योग्य नहीं बना वा योग्य नहीं।

१०—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि श्री देवगुरु

भगवान् के देव प्रभावों के ग्रहण करने के योग्य बनने से, उस में वा किसी जन के आत्मा में, किसी एक वा कई सात्विक भावों का उत्पन्न वा उन्नत होना और उसके वा उनके द्वारा उच्च बल और उच्च रस वा सुख का उत्पन्न होना अवश्यम्भावी है। और यदि उन में से किसी भाव की उत्पत्ति वा उन्नति न हो, तो समझना चाहिए कि वह देव प्रभावों के लाभ करने के योग्य नहीं बना।

४. देव प्रभावों के ग्रहण करने के विषय में अयोग्यता

११—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि वह वा कोई और जन देव जीवन प्राप्त श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में अपने हृदय में घृणा उत्पादक किसी नीच और निकृष्ट भाव को रखकर और उस के द्वारा किसी प्रकार की दुश्चिन्ता में प्रवृत्त होकर, आत्मिक जगत् के नियमानुसार, उनके देव प्रभावों के ग्रहण करने की योग्यता को (यदि उसमें कोई ऐसी योग्यता हो) नष्ट करता रहता है, अथवा उसे पूर्णतः नष्ट कर देता है।

५. देव प्रभावों के ग्रहण करने के योग्य न होने वा न रहने से आत्मिक पतन और उसके लक्षण

१२—महा यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों के ग्रहण करने के पूर्णतः अयोग्य होकर वा उनके ग्रहण के विषय में धीरे २ अपनी योग्यता को खोकर और उनके विरोधी प्रभावों में रहकर और उन्हें ग्रहण करके, आत्मिक जगत् के नियमानुसार, उसके लिए दिनों दिन आत्मिक पतन की ओर गति करना और पतित होना अवश्यम्भावी है।

१३—महा यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि जब किसी साधक का अपने जीवन दाता श्री

देवगुरु भगवान् के साथ आत्मिक सम्बन्ध शिथिल होकर घटने लगता है वा पूर्णतः कट जाता है, तब उस का ऐसा पतन निम्न लिखित सब वा कई मोटे २ लक्षणों से पहचाना जा सकता है:—

(१) श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध मे श्रद्धा और आकर्षण आदि विषयक विविध आवश्यक साधनों की ओर से उदासीनता वा विमुखता।

(२) श्री देवगुरु भगवान् के सच्चे श्रद्धावान् और उच्च जनों की संगत और उनके साधनों में योग देने की ओर से उदासीनता वा विमुखता।

(३) श्री देवगुरु भगवान् और उनके नाना सच्चे श्रद्धावान् और उच्च जनों की निन्दा।

(४) देवसमाज के सम्बन्ध में अपने एक वा दूसरे प्रकार के सेवा विषयक काम से उदासीनता वा विमुखता।

(५) श्री देवगुरु भगवान् वा उनकी स्थापित देवसमाज के किसी विरोधी वा विरोधियों की ओर आकर्षण और उनकी संगत के लिए आकांक्षा और उस में तृप्ति।

(६) श्री देवगुरू भगवान् और देवसमाज के विविध उपकारों के बदले में विविध प्रकार के कृतघ्नता-मूलक आचरण।

६. श्री देवगुरु भगवान् के साथ आत्मिक सम्बन्ध स्थापन करने के निमित्त कई सात्विक भावों के उत्पन्न और उन्नत करने की आवश्यकता

१४—महा यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि उसे श्री देवगुरु भगवान् के साथ अपना आत्मिक सम्बन्ध स्थापन और उन्नत करने के निमित्त अपने हृदय मे उनके प्रति

(१) श्रद्धा,

(२) आकर्षण वा अनुराग,

(३) कृतज्ञता,

(४) हानि परिशोध,

विषयक सात्विक भावों के उत्पन्न और उन्नत करने की नितान्त आवश्यकता है।

१५—महा यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि वह देवजीवनप्राप्त श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों को नियमित रूप से ग्रहण करने के योग्य बनकर ही उनके साथ सात्विक सम्बन्ध स्थापन करने वाले सब वा कई भावों वा किसी भाव को अपने हृदय में उत्पन्न अथवा उन्नत कर सकता है।

१६—महा यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि जिस प्रकार अग्नि वा ताप शक्ति के द्वारा किसी का शरीर दग्ध हो जाता है, उसी प्रकार उसके आत्मा में किसी ऐसे नीच भाव के उदय होने से, कि जो उसके जीवन दाता श्री देवगुरु भगवान् के प्रति किसी प्रकार की घृणा वा दुश्चिन्ता उत्पन्न करने का हेतु बनता हो, उसके वह जीवन दायक भाव भी कि जो उसे श्री देवगुरु भगवान् के साथ जोड़ते हैं, अल्पाधिक वा पूर्णतः, दग्ध हो जाते हैं। और जितने अंश उसके यह भाव दग्ध होकर उसके आत्मिक सम्बन्ध को श्री देवगुरु भगवान् के साथ शिथिल वा विनष्ट कर देते हैं, उतने ही अंश वह उनके देव प्रभावों के लाभ करने के अयोग्य हो जाता है, और यदि वह पूर्णत. दग्ध हो जाएं, तो वह उन से पूर्णतः कट कर पूर्णतः अयोग्य हो जाता है।

७. श्री देवगुरु भगवान् के साथ उन्नत शील सात्विक सम्बन्ध के बड़े २ लक्षण

१७—महा यज्ञ साधन कर्ता के हृदय में श्री देवगुरु भगवान् के साथ सात्विक सम्बन्ध की उत्पत्ति और उन्नति से जिन २ लक्षणों का प्रगट होना आवश्यक है, वह यह हैं—

(१) अपने प्रत्येक सम्बन्धी, जन और पदार्थ की तुलना में श्री देवगुरु भगवान् का जीवनप्रद सम्बन्ध अपने लिए दिनों दिन अधिक से अधिक श्रेष्ठ, मूल्यवान् और आवश्यक अनुभव होना।

(२) श्री देवगुरु भगवान् के साथ सर्वोच्च सम्बन्ध की तुलना में उसका जो २ सम्बन्धी जन वा पदार्थ उस पर अधिक अधिकार रखता हो, उस का धीरे २ बोध होना, और उस बोध का बढ़ना और उसके सम्बन्ध में अपने दासत्व के प्रति घृणा और उससे निकलने के लिए आकांक्षा और संग्राम का उत्पन्न होना और बढ़ना।

(३) श्री देवगुरु भगवान् के साथ उसके सम्बन्ध की स्थिरता और उन्नति में उस का जो २ सम्बन्धी, जन वा पदार्थ जहां तक उसे बाधाजनक बोध हो, उसे त्याग करने के लिए अपने हृदय में अधिक से अधिक आकांक्षा और बल अनुभव करना और धीरे २ उसे त्याग करने के योग्य बन कर ही शान्ति पाना।

(४) श्री देवगुरु भगवान् के प्रति अपने हृदय में किसी प्रकार की घृणा वा घृणा-मूलक चिन्ता की उत्पति वा उन्नति को अपने आत्मा के लिए अत्यन्त सांघातिक और विनाशकारी रोग बोध करना और उस के प्रति अपने भीतर भय बढ़ता हुआ अनुभव करना।

(५) अपने परम स्तवनीय श्री देवगुरु भगवान् की महिमा के सुनाने और उनकी महिमा के सुनने की अधिक से अधिक आकांक्षा अनुभव करना, और ऐसा करके हार्दिक उच्च रस वा उच्च सुख लाभ करना।

(६) श्री देवगुरु भगवान् के स्थापित विश्वगत नाना यज्ञों के साधनों के सम्बन्ध में उदासीनता से कष्ट बोध करना,

और उनके साधनों की योग्यता लाभ करने के निमित्त बढ़ती हुई आकांक्षा अनुभव करना।

(७) श्री देवगुरु भगवान् के जीवनप्रद देवप्रभावों के लाभ करने के लिए अपने हृदय में अधिक से अधिक आकर्षण वा आकांक्षा अनुभव करना।

(८) श्री देवगुरु भगवान् की स्थापित प्रत्येक संस्था के प्रति आकर्षण और उसकी सब प्रकार की भलाई के सम्बन्ध में सहायक बनने और उसे यथा साध्य सब प्रकार की हानियों से बचाने के लिए अपने हृदय में बढ़ती हुई आकांक्षा अनुभव करना।

(९) अपने परम अनुराग भाजन श्री देवगुरु भगवान् और उनके सच्चे श्रद्धावान् और सच्चरित्र पारिवारिक सम्बन्धियों के प्रति समुचित सन्मान प्रदर्शन करने और यथा सम्भव और यथा साध्य सेवाकारी बनने के लिए अपने हृदय में अधिक से अधिक आकांक्षा अनुभव करना, और उसका अपनी विविध क्रियाओं के द्वारा प्रमाण देना।

(१०) अपने परम अनुराग भाजन श्री देवगुरु भगवान् के विरोधियों की संगत और उनके बुरे प्रभावों के प्रति अपने हृदय में अधिक से अधिक घृणा बढ़ती हुई अनुभव करना, और उनकी संगत से दूर रहना।

(११) अपने परम अनुराग भाजन श्री देवगुरु भगवान् के जो २ जन जितने २ अंश अधिक श्रद्धावान और अनुरागी हों, उनके प्रति उतना ही अधिक सन्मान और आकर्षण और उनका संग करने और उनके सन्मुख अपने हृदय के खोलने की आकांक्षा अनुभव करना।

(१२) अपने परम विश्वसनीय श्री देवगुरु भगवान् के देव रूप के प्रति अर्थात्,

(१) क्या उनके पूर्ण हिताकांक्षी और पूर्ण हित कर्ता होने के सम्बन्ध में,

(२) क्या उनके प्रत्येक नीच गति से पवित्र और ऊपर होने के सम्बन्ध में,

(३) क्या उनके जीवन व्रत की सिद्धि के सम्बन्ध में, और

(४) क्या उनके सम्बन्ध के अपने सब प्रकार के कल्याण के लिए परम आवश्यक होने के सम्बन्ध में,

अपने हृदय में सत्य विश्वास की दिनों दिन अधिक से अधिक उन्नति अनुभव करना।

८. सत्य देव और पूजनीय श्री देवगुरु भगवान् की पूजा

१८—महा यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को भली भान्त उपलब्ध करके कि

(अ) देवजीवनप्राप्त सत्य देव श्री देवगुरु भगवान् ही उस के परम पूजनीय वा परम उपास्य हैं, और

(इ) एक मात्र उन्हीं की सत्य पूजा वा उपासना करने से वह जहां तक सम्भव हो, अपने आत्मा की सत्य मोक्ष और उसके सत्य विकास के लिए उनके मोक्ष दायक और विकासकारी देव प्रभावों को लाभ कर सकता है,

योग्यता रखने पर प्रति दिन नियमित रूप से उन की पूजा का सच्चा साधन करे।

१६—महा यज्ञ साधन कर्ता इस सत्य को भली भान्त जाने और उपलब्ध करे, कि वह जब तक अपनी सात्विक पूजा के साधनों के द्वारा, अपने परम पूजनीय श्री देवगुरु भगवान् के देव रूप तक पहुंचकर; उनके देव प्रभावों को लाभ और ग्रहण न कर सके, और उनके ग्रहण करने से उस में जिस २ प्रकार के उच्च परिवर्तनकारी

लक्षणों का उत्पन्न होना आवश्यक है, वह उत्पन्न न हों, तब तक उसकी पूजा सत्य और सुफल नहीं हो सकती।

२०—महा यज्ञ साधन कर्ता के लिए श्री देवगुरु भगवान् की सच्ची पूजा करने के निमित्त जिस २ प्रकार के साधनों के ग्रहण करने की आवश्यकता है, वह यह हैं :—

(श्रद्धा विषयक)

(१) श्री देवगुरु भगवान् की छवि के आगे खड़े होकर वा बैठकर उनके देव रूप पर भली भान्त चिन्तन करके, और उन्हें अपने और अपने सब प्रकार के सम्बन्धियों से असंख्य गुणा बड़ा उपलब्ध करके, उन्हें बार २ प्रणाम करना।

(२) श्री देवगुरु भगवान् की छवि को किसी उजले और परिष्कार वस्त्र के द्वारा झाड़ पोंछ कर उसे फूलों से सुसज्जित करना।

(३) श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में महिमा प्रदर्शक देवस्तोत्र और अन्य भजनों का विचार पूर्वक और चित्त लगाकर दोहरा २ कर देर तक गान वा कीर्तन करना; और अपने आत्मा के लिए उनके जीवन प्रद सम्बन्ध की पूर्ण आवश्यकता और उसके शिथिल वा नष्ट होने में अपनी आत्मिक मृत्यु के सच्चे दृश्य को सन्मुख लाकर अपनी नाना प्रकार की तुच्छता और हीनता को अनुभव और उनके द्वारा अपने हृदय को सरस और दीन बनाने का अभ्यास करना।

(४) श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में जिन २ लेखों के पाठ से उनकी कोई सच्ची महिमा उसके सन्मुख आ सकती हो, उनका विचार पूर्वक पाठ करना, और ऐसे समयों

में जो २ भाव उसके हृदय में उत्पन्न हों, उन्हें यथा साध्य लिखने का अभ्यास करना।

(५) श्री देवगुरु भगवान् के पारिवारिक सम्बन्धियों और जिन २ स्थानों वा वस्तुओं का उनके साथ कोई विशेष सम्बन्ध हो, वा रहा हो, उनके प्रति उचित और यथेष्ट सन्मान प्रदर्शन करने का अभ्यास करना।

(६) जो जन श्री देवगुरु भगवान् के सन्मान के पात्र हों, उनका उचित रूप से और भली भान्त सन्मान करना।

(७) श्री देवगुरु भगवान् की छवि, उनकी रचित पुस्तकों और उन से सम्बन्ध रखने वाली जो २ वस्तुएं उसके पास हों, उन्हें बहुत सन्मान पूर्वक अच्छी अवस्था में रखना और जहां कहीं उनका किसी और के द्वारा निरादर वा अपमान होता हो, वहां उन्हें उस से रक्षा करने के लिए उचित रूप से चेष्टा करना।

(८) श्री देवगुरु भगवान् की अपने मुंह वा लेख वा किसी संकेत आदि के द्वारा कभी और कहीं निन्दा करके वा खिल्ली उड़ा के उत्फुल्लित न होना, और न आप उनकी कभी निन्दा करना और न किसी और के मुंह से कभी उनकी निन्दा सुनना और न किसी ऐसे लेख को पढना वा सुनना कि जिस में उनकी निन्दा हो, सिवाय इस के कि उसके खंडन और सत्य की पोषकता के लिए उसे ऐसा करना आवश्यक बोध हो।

(९) श्री देवगुरु भगवान् की अपेक्षा अपने आप को किसी विषय में झूठ मूठ बड़ा जान कर वा उनसे ज्योति और बल पाकर उसने अपने किसी शुभ काम में जो कुछ सफलता लाभ की हो, उसे झूठ मूठ अपने साथ प्रयोग करके अपने महा हानिकारक घमंड को न बढाना।

(अनुराग विषयक)

(१०) श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में अनुराग भाव की उत्पत्ति और उन्नति के लिए उनके विषय में किसी ऐसे आत्मा के उपदेशों को ध्यान पूर्वक सुनना, कि जिसने आवश्यक साधनों के द्वारा उनके सम्बन्ध में इस भाव को उत्पन्न वा उस की अपेक्षा अधिक उन्नत किया हो।

(११) श्री देवगुरु भगवान् के अद्वितीय आविर्भाव, अद्वितीय देव रूप और उनके अद्वितीय जीवन व्रत के सम्बन्ध में जो २ लेख उन्हीं के लिखे हुए हों, और जिन्हें वह समझ वा उपलब्ध कर सकता हो, उन्हें विचार पूर्वक पाठ करने का अभ्यास करना।

(१२) श्री देवगुरु भगवान् के अद्वितीय और महा दुर्लभ देव प्रभावों को पाकर जब उसके हृदय में उनके सम्बन्ध में कोई सचा शुभ संकल्प उत्पन्न हो, तब उसके पूर्ण करने के लिए भली भान्त चेष्टा करना और अपने किसी नीच भाव का साथी बनकर उसे नष्ट न करना।

(१३) श्री देवगुरु भगवान् के जीवन व्रत सम्बन्धी कार्य की उन्नति के लिए, जहां तक सम्भव हो, अपने तन मन धन और जीवन आदि को अर्पण करना।

(१४) श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों को पाकर उसके हृदय मे उनके वा किसी और के सम्बन्ध में अपनी जिस किसी नीच गति का कुछ भी बोध और उस से मोक्ष पाने के लिए कुछ भी संग्राम उत्पन्न हो, उस बोध और संग्राम को गहरा करने और उसके द्वारा अपनी उस नीच गति से उद्धार पाने के लिए आवश्यक काल तक पाठ, विचार और लिखने और उनसे बल की प्राप्ति के लिए सची प्रार्थना करने के साधन ग्रहण करना।

(१५) श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों को पाकर उसे अपने हृदय में जब अपनी किसी नीच गति से उद्धार और किसी उच्च भाव के जाग्रत वा उन्नत करने की आकांक्षा बोध हो, और उसके पूर्ण करने के निमित्त उसे अपने जिस किसी सुख वा आराम, रुचि वा अभ्यास, धन वा सम्पत्ति, पद वा किसी सम्बन्धी आदि के त्याग की आवश्यकता हो, उसके त्याग वा उसके द्वारा अपने शुभ के सम्बन्ध में उस में जब किसी सन्देह वा आशंका वा भय का उद्रेक हो, तब श्री देवगुरु भगवान् ने अपने जीवन में शुभ की जय के लिए जो अद्वितीय और पूर्ण त्याग किया है, उनकी इस त्याग विषयक नाना घटनाओं को बार २ सन्मुख लाकर शुभ की जय के सम्बन्ध में अपने अविश्वास के दूर करने और विश्वास के बढाने के लिए अभ्यास करना।

(१६) अपने परम विश्वसनीय श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में सब प्रकार के मिथ्या विश्वासों को अपने आत्मा के लिए महा भयानक और महा हानिकारक रोग अनुभव करने का अभ्यास करना।

(१७) अपने हृदय की आप परीक्षा करने का अभ्यास करना और उस में श्री देवगुरु भगवान् के प्रति अनुराग भाव के विरोधी वा उसकी उन्नति मे विघ्नकारी जो २ नीच भाव वर्तमान हों, उन में से प्रत्येक के प्रति घृणा की उत्पत्ति के लिए,

(अ) उनके विषय मे किसी ऐसे आत्मा के उपदेशों को ध्यान पूर्वक सुनना, कि जिस के हृदय में किसी ऐसे नीच भाव के प्रति यथेष्ट रूप से घृणा उत्पन्न हो चुकी हो और

(ङ) इस विषय में जो २ घृणा-उत्पादक और लेख मिल सकते हों, उन्हें अपने पास रखना और उनका विचार पूर्वक पाठ करना।

(कृतज्ञता विषयक)

(१८) श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में अपनी अकृतज्ञता विषयक महा हानिकारक स्वार्थ परता से निकलने के लिए उनकी वा उनके ऐसे पारिवारिक जनों की कि जो उनके प्रतिनिधि हों, विविध प्रकार से सेवा करना।

(१६) श्री देवगुरु भगवान् के अपने प्रति अमूल्य उपकारों को स्मरण करने का अभ्यास करना और उनके सम्बन्ध में अपने आपको उनका ऋणी वा कृतज्ञ अनुभव करने और उस के परिशोध के लिए समुचित रूप से चेष्टा करना।

(हानि परिशोध विषयक)

(२०) श्री देवगुरु भगवान् के देव प्रभावों को पाकर उसके हृदय में उनके वा किसी और के सम्बन्ध में अपनी जिस किसी नीच गति के विकार का बोध उत्पन्न हो, उस से जहां तक सम्भव हो, शुद्धि वा पवित्रता लाभ करने के लिए हानि परिशोध विषयक सब आवश्यक साधन ग्रहण और पूरे करना।

वार्षिक यज्ञ

१—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को महा यज्ञ विषयक आदेशों का विशेष रूप से विचार पूर्वक पाठ वा श्रवण करना चाहिए।

२—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को पूर्णाङ्ग धर्मावतार श्री देवगुरु भगवान् के आविर्भाव और उनके देव रूप के विषय मे विशेष रूप से चिन्तन वा विचार करना चाहिए।

३—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को इस विषय पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए, कि उसने अपने परम पूजनीय और मूल सम्बन्धी श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर किस २ प्रकार का और क्या २ हित लाभ किया है।

४—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को इस विषय पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए, कि उसके भिन्न उसके पारिवारिक जनों में से जो २ जन श्री देवगुरु भगवान् की शरण मे आए हैं, उन का और उनके द्वारा उसका क्या २ हित साधन हुआ है।

५—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को इस विषय पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए, कि उस ने अपने परम पूजनीय और मूल सम्बन्धी श्री देवगुरु भगवान् की शरण लेने के अनन्तर अपने भीतर उन के सम्बन्ध में कहां तक श्रद्धा और अनुराग आदि आवश्यक सात्विक भावों को उत्पन्न वा उन्नत किया है।

६—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को इस विषय पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए, कि उसने अपने परम पूजनीय और मूल सम्बन्धी श्री देवगुरु भगवान् की शरण में आकर और उनके देव प्रभावों के पाने के योग्य बन कर, अपने आत्मा में किस २ पतन वा विनाशकारी भाव से कहां २ तक मोक्ष लाभ की है।

७—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को इस विषय पर विशेष रूप से यह विचार करना चाहिए, कि उस ने अपने परम पूजनीय और मूल सम्बन्धी श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध मे उच्च गति उत्पादक किस २ सात्विक भाव के साधन से उदासीन वा विमुख रहकर अपने आत्मा की क्या २ हानि की है।

८—इन दिनों मे श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध मे जहां कहीं सम्मिलित साधन होते हों, उन में यथा साध्य योग देना चाहिए।

९—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को अपने परम पूजनीय

और परम हित कर्ता श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में कृतज्ञता विषयक विविध प्रकार के साधन ग्रहण करने चाहिएं ।

१०—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को यथा साध्य ऐसे स्थानों की यात्रा और ऐसी वस्तुओं का दर्शन करना चाहिए, कि जिन के साथ श्री देवगुरु भगवान् का कोई विशेष सम्बन्ध रहा हो।

११—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने पारिवारिक जनों को एकत्र करके, उनके सन्मुख अपने परम पूजनीय और परम हितकर्ता श्री देवगुरु भगवान् के वंश और उनके जीवन चरित विषयक नाना सत्यों की कथा और उनकी महिमा का वर्णन करना चाहिए।

१२—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को अपने परम पूजनीय और मूल सम्बन्धी श्री देवगुरु भगवान् के आविर्भाव और उनके देव जीवन सम्बन्धी नाना लेखों का विचार पूर्वक विशेष रूप से पाठ वा श्रवण करना चाहिए।

१३—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को अपने बच्चों को श्री देवगुरु भगवान के अद्वितीय आविर्भाव और उनकी महिमा के सम्बन्ध मे, उनकी समझ के अनुसार, विशेप रूप से उपदेश देना चाहिए, और भगवान् की छोटी २ जीवन कथाओं और उनकी महिमा के सम्बन्ध में स्तोत्रों और भजनों को कंठस्थ कराना चाहिए।

१४—इन दिनों मे यज्ञ साधन कर्ता को महा व्रत के उपलक्ष्य मे अपने और अपने पारिवारिक जनों के लिए यथा साध्य कुछ नई पोशाकें बनवानी चाहिएं।

१५—इन दिनो मे यज्ञ साधन कर्ता को महा व्रत के विशेष शुभ अवसर पर अपने परम पूजनीय श्री देवगुरु भगवान् के जीवन व्रत में विशेष रूप से सेवाकारी बनने और ऐसा करके अपना श्रेष्ठ हित साधन करने के निमित्त, देवसमाज और उसकी नाना संस्थाओं के लिए यथा साध्य दान एकत्र करने का उत्साह पूर्वक काम करना चाहिए।

१६—इन दिनों में यज्ञ साधन कर्ता को यथा साध्य महोत्सव सम्बन्धी विविध प्रकार के आयोजन कार्य में भाग लेना चाहिए।

महा व्रत अथवा जन्म महोत्सव

१—देव समाज परिषद् की ओर से स्थिर की हुई कार्य प्रणाली के अनुसार, एक वा कई स्थानों में, महा व्रत का साधन वा जन्म महोत्सव होना चाहिए।

२—महोत्सव सम्बन्धी प्रत्येक स्थान को भली भान्त परिष्कार और जहां तक उचित हो, उत्तम रीति से सुसज्जित करना चाहिए।

३—महोत्सव क्षेत्र में यात्रियों के ठहरने और उनके आहार आदि का पहले से प्रबन्ध होना चाहिए।

४—महोत्सव क्षेत्र में यात्रियों की आवश्यक सेवा और शुश्रूषा का उचित रूप से प्रबन्ध होना चाहिए।

५—महोत्सव क्षेत्र के यात्रियों को, जहां तक सम्भव हो, प्रथम सभा से कुछ काल पहले ही वहां पर पहुंच जाना चाहिए।

६—महोत्सव सम्बन्धी जिस २ कार्य सम्पादन के लिए जो २ जन दायी रक्खा गया हो, उसे अपने २ कार्य को अपनी सामर्थ्य के अनुसार बहुत उत्तम रूप से सम्पादन करना चाहिए।

७—महोत्सव के विशेष शुभ अवसर पर, श्री देवगुरु भगवान् के पूजन के भिन्न, उनके सम्बन्ध में महा यज्ञ विषयक वचनों को आधार बनाकर कुछ उपदेश वा उनके परोपकार विषयक विविध प्रकार के कामों के सम्बन्ध मे व्याख्यान होने चाहिएं।

८—महोत्सव के विशेष शुभ अवसर पर, श्री देवगुरु भगवान् के वंश और उनके देव जीवन के सम्बन्ध में उपदेश वा व्याख्यान होने चाहिएं।

९—महोत्सव के विशेष शुभ अवसर पर, श्री देवगुरु भगवान् की धर्म विषयक नाना तत्वों की सत्य शिक्षा और उसकी अन्य

सम्प्रदायों की मिथ्या शिक्षा की तुलना में **विशेषता** के सम्बन्ध में उपदेश वा व्याख्यान होने चाहिएं।

१०—महोत्सव के विशेष शुभ अवसर पर, उपस्थित जनों में से जो जन **सेवक** बनने के योग्य हों, उन्हें सेवकी में ग्रहण करना चाहिए।

११—महोत्सव के विशेष शुभ अवसर पर, उपस्थित जनों में से जो जन देवसमाज की विधि के अनुसार कोई **पारिवारिक अनुष्ठान** सम्पन्न कराना चाहें, उनके ऐसे शुभ अनुष्ठान सम्पन्न होने चाहिएं।

१२—महोत्सव के विशेष शुभ अवसर पर, अपने परम पूजनीय श्री देवगुरु भगवान् के जीवन व्रत में **सेवाकारी** बनने और अपने लिए श्रेष्ठ हित लाभ करने के लिए उपस्थित जनों को देवसमाज और उस की नाना संस्थाओं के निमित्त धन, सम्पत्ति अथवा अपने आप को अर्पण करना चाहिए।

महा यज्ञ के दिनों में विशेष रूप से विचार पूर्वक पाठ करने के लिए वन्दना और आकांक्षा।

१. वन्दना

(देव स्तोत्र का गान)

देवजीवन धारकम्, { देव धर्म प्रवर्तकम्,
सत्यधर्म प्रवर्तकम्,

सर्वहित सम्पादकम्, देवगुरूं नमाम्यहम् ॥१॥

देवज्योतिः प्रकाशकम्, { आत्मरूप प्रदर्शकम्;
आत्मरोग प्रदर्शकम्।
आत्मपात प्रदर्शकम्;
आत्मक्षेम प्रदर्शकम् ॥

आत्म-बोध प्रबोधकम्,
आत्म-ज्ञान प्रबोधकम्,
सत्य-धर्म प्रबोधकम्,
देव-धर्म प्रबोधकम्, } देवगुरुं नमाम्यहम् ॥ २ ॥

देवतेजः प्रकाशकम्, } नीचराग विनाशकम्; नीच घृणा विनाशकम्।
सत्यमोक्ष प्रदायकम्, देवगुरुं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥

देवतेजः प्रकाशकम्, } उच्च भावोत्पादकम्; उच्च रागोत्पादकम्;
उच्च रूप विकासकम्, देवगुरुं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

भावार्थ

हे देव ! तुम देव जीवन धारी हो, तुम सत्य अथवा देव धर्म के प्रवर्तक हो, तुम सकल हितों के सम्पादक हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

हे देव ! तुम देव ज्योति के प्रकाशक हो, तुम अपनी देवज्योति के द्वारा मनुष्यात्मा के अन्धकार को दूर करके उसे उसकी गठन, उसके रोगों, उसके पतन, और उसकी कुशल को दिखाते हो, और इस प्रकार उस में आत्म ज्ञान उत्पन्न करके उसे सत्य धर्म वा देव धर्म का ज्ञान प्रदान करते हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥२॥

हे देव ! तुम देव तेज के प्रकाशक हो, तुम अपने देव तेज के द्वारा मनुष्यात्मा के नीच अनुरागों और उसकी नीच घृणाओं को नष्ट करते हो; इसलिए तुम मनुष्यात्मा के सत्य मोक्ष दाता हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥३॥

हे देव ! तुम देव तेज के प्रकाशक हो, तुम अपने देव तेज के द्वारा मनुष्यात्मा मे उच्च भावों और उच्च अनुरागों को उत्पन्न करते हो, और उम में उच्च रूप वा उच्च जीवन का विकास करते हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥४॥

भजन

अद्वितीय जीवन व्रत धारी, अद्वितीय महिमा है तुम्हारी । टेक ।
अद्वितीय तुम धर्म के शिक्षक, अद्वितीय तुम धर्म प्रवर्तक;
अद्वितीय तुम जग हितकारक, अद्वितीय जीवन व्रत धारी ॥१॥
अद्वितीय दुख औ' उत्पीड़न, सहकर किया सदा व्रत पालन,
सब प्रकार से पर हित साधन, अद्वितीय जीवन व्रत धारी ॥२॥
अद्वितीय कर त्याग जो तुमने, दान जगत् को दिया है तुमने;
अद्वितीय देखा वह हमने, अद्वितीय जीवन व्रत धारी ॥३॥
अद्वितीय व्रत ग्रहण न करते, अद्वितीय सब त्याग न करते;
क्योंकर हमरे जीवन बचते,/बनते, अद्वितीय जीवन व्रत धारी ॥४॥
तुमने त्याग किए हैं जो २, परहित कारण तुमने जो २;
सन्मुख लावे हम सब वो वो, अद्वितीय जीवन व्रत धारी ॥५॥
ज्योति तुमरी हम में आवे, महिमा तुमरी हमें दिखावे,
तुम संग शुभ सम्बन्ध बढ़ावे,/करावे, अद्वितीय जीवन व्रत धारी ॥६॥

हे देव! आप का आविर्भाव अद्वितीय आविर्भाव ! आप का जीवन व्रत अद्वितीय जीवन व्रत! जिस दिन आप ने अपना जीवन व्रत ग्रहण किया, वह दिन क्या **इस देश और क्या इस पृथ्वी के लिए अद्वितीय शुभ दिन!** इस पृथ्वी में यद्यपि अनेक प्रकार के व्रत धारी हुए हैं, तथापि आप का सा अनोखा जीवन व्रत कब और किसने ग्रहण किया है ? किसी ने नहीं ।

हे भगवन् ! जिस परम लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए आप ने यह पद गाकर :—

"सत्य शिव सुन्दर ही मेरा, परम लक्ष्य होवे;
जग के उपकार ही में, जीवन यह जावे ।"

अपना अद्वितीय जीवन व्रत ग्रहण किया था, उसी के लिए आप को विश्व ने अपने लाखों वर्षों के विकासकारी संग्राम के द्वारा प्रसव किया था। विश्व के अगणित अस्तित्वों की शृंखला के प्रकाश में आप ही इस पृथ्वी में एक मात्र ऐसे अस्तित्व हो सकते थे, कि जो अपनी आत्मिक गठन के विचार से, जैसे एक ओर देव शक्तियों को बीज रूप मे लेकर प्रगट हुए, वैसे ही दूसरी ओर उन शक्तियों के आवश्यक विकास पा चुकने पर, ऐसा जीवन व्रत ग्रहण करने के योग्य हुए। आप के ही विशेष अस्तित्व में यह सब कुछ सम्भव था। आप ही अपने इस विशेष अस्तित्व में जैसे आत्मिक गठन की पूर्णतः लाभ करने के योग्य हुए, वैसे ही उस के द्वारा धर्म के पूर्णांग रूप वा देव जीवन के प्रकाशक हुए। आप एक मात्र पूर्णांग धर्म के अवतार! आप पूर्णांग धर्म स्वरूप! आप सत्य धर्म के पूर्ण प्रकाशक! आप सत्य धर्म के पूर्ण आदर्श!

हे देव! जीवन व्रत ग्रहण करने से पहले आप अपनी देव शक्तियों को विकसित करके सब प्रकार की निम्न शक्तियों के अधिपति वा प्रभु बन चुके थे, इसीलिए आप अपने जीवन व्रत के लिए पूर्णतः सच्चे रहकर उसे पूर्ण कर सके।

आप अपनी देव शक्तियों के द्वारा अपने जीवन व्रत की सिद्धि के लिए सब प्रकार के आवश्यक त्याग ग्रहण करने के योग्य हुए। आप का इस पृथ्वी में जैसे जीवन व्रत अद्वितीय है, वैसे ही उसकी सिद्धि के लिए आपने नाना प्रकार का जो २ त्याग किया है, वह भी अद्वितीय है।

हे देव! आप ने अपने आत्मा में देव जीवन को विकसित करके उसकी पूर्ण गठन लाभ की है, कि जिसे प्राप्त होकर आत्मा विश्व के प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में जहां एक ओर नीच गतियों के अधिकार से पूर्णतः मुक्त होता है, वहां दूसरी ओर विकास के महा अद्भुत नियम के साथ एकात्म भाव अर्थात् एकता स्थापन करके उसके विचित्र कार्य में साथी बन जाता है, और इस प्रकार क्या ऐसा आत्मा और क्या विश्व का विकासकारी नियम दोनों ही एक

दूसरे के लिए सहायक और सहकारी बन जाते हैं। कैसा महान् मेल ! और इस मेल के कैसे महान् और अमृत दायक फल !! यह विश्व के विकास के साथ एकता सम्पादक विषयक तत्व ज्ञान कैसा अद्भुत ! कैसा अद्वितीय ! हे भगवन् ! आप देव जीवन को प्राप्त होकर इस तत्व के द्रष्टा और प्रकाशक हुए हैं।

इस के भिन्न आप देव जीवन को प्राप्त होकर मनुष्यात्मा के रूप और उनके जीवन के सम्बन्ध में जिन २ महा गूढ़ सत्यों के देखने, जानने और प्रकाश करने के योग्य हुए, उन्हें आज तक किसी ने नहीं देखा और नही जाना, और नहीं प्रकाश अथवा प्रचार किया था। मनुष्यात्मा क्या है, उसका जीवन क्या है, उसकी नीच और उच्च गतियां क्या हैं, प्रत्येक आत्मा की नीच गतियां चाहे वह आन्तरिक चेष्टा-मूलक हों, और चाहे बाह्यक चेष्टा-मूलक, उसका किस प्रकार नाश करती हैं, और यदि उस में उच्च गति दायक नाना प्रकार का आवश्यक परिवर्तन उत्पन्न न हो, वा न हो सके; तो वह किस प्रकार धीरे २ क्षय-प्राप्त होकर एक दिन पूर्णत. नष्ट हो जाता है, उच्च गति दायक कोई परिवर्तन किस प्रकार होता वा हो सकता है, और उसके द्वारा आत्मा किस प्रकार उच्च वा विकसित होता है, और वह उच्च जीवन में विकसित होकर किस प्रकार उच्च से उच्च लोकों में वास करने के योग्य बनता है; इन सब विषयों में आप ने जो सत्य देखे और अपने अनुसन्धान द्वारा जाने हैं, वह जैसे पूर्णत' विश्व-स्वीकृत वा विज्ञान-मूलक हैं, वैसे ही इस पृथ्वी के सब धर्म सम्प्रदायों की कल्पना-मूलक मिथ्या शिक्षा से बिल्कुल अनोखे और विचित्र हैं। हे देव ! आप ही इस विज्ञान-मूलक सत्य धर्म के एक मात्र अद्वितीय प्रकाशक और शिक्षक हैं।

आहा ! तब जिस दिन आप हमारी भूमि में आविर्भूत हुए, अर्थात पौषवदि प्रतिपदा सम्वत् १९०७ वि० का दिन क्या हमारे लिए, क्या हमारी समाज के लिए, क्या हमारी जाति और क्या मनुष्य मात्र के लिए, क्या पशु जगत्, क्या उद्भिद् जगत् और क्या भौतिक

जगत् के लिए निश्चय अति महान् और आनन्दकारी दिन ! और फिर वह केवल आप का जन्म दिन ही नहीं, किन्तु सारे जगत् के हित के लिए आप के जीवन व्रत अथवा महा व्रत ग्रहण करने का दिन भी है। तब यह दिन हम सब के लिए और भी विशेष रूप से चिन्तन करने का दिन। विचार का दिन। आनन्द का दिन !! और महोत्सव का दिन है !!!

हे सत्य देव ! यदि इस पृथ्वी में आपका यह अद्वितीय आविर्भाव न होता, और आप अपनी अद्वितीय देव शक्तियों में विकसित होकर अपना अद्वितीय महा व्रत ग्रहण न करते, और इस अद्वितीय व्रत के पूरा करने के लिए सब प्रकार का अद्वितीय त्याग न करते, और नाना प्रकार के घोर उत्पीड़नों और सांघातिक दुखों और क्लेशों, विपदों और कठिनाइयों आदि को अपने सिर पर न लेते, और उन मे से अपने अद्वितीय धर्म बल के द्वारा उत्तीर्ण न होते तो आज

(१) हम और हमारे पारिवारिक जन कहां और किस अवस्था में होते ?

(२) इस पृथ्वी को (विशेष कर इस देश को) विश्व-स्वीकृत और विज्ञान-मूलक सत्य धर्म और उसके तत्वों और साधनों की अद्वितीय शिक्षा कहां से मिलती ?

(३) देवशास्त्र जैसा अलौकिक शास्त्र हमें कैसे प्राप्त होता ?

(४) देवसमाज जैसी हितकर और निराली धर्म समाज हमें कहां से मिलती ?

(५) हमारे पारिवारिक पवित्र अनुष्ठानों के सम्पन्न करने के लिए हमे ऐसी सुन्दर और शुभ कर विधि कहां से प्राप्त होती ?

(६) हमे अपने और अपने पारिवारिक जनों के नाना प्रकार के शुभ के लिए कई प्रकार की हितकर संस्थाएं कहां से लाभ होतीं ?

(७) हमारे नाना महा हानिकारक मिथ्या विश्वास और संस्कार क्योंकर दूर होते ?

(८) हमारे परिवारों से नाना पाप क्रियाओं और दुराचारों के नष्ट होने से हमें विविध प्रकार का जो २ सुख मिला है, हमें स्वास्थ्य, समृद्धि और शान्ति प्राप्त हुई है, और हमारे कई प्रकार के हानिकारक सम्बन्ध हितकर बने हैं, यह सब फल क्योंकर उत्पन्न होते ?

२. आकांक्षा

हे देव ! ऐसा हो, कि "हम आपके जीवन व्रत की महिमा और सफलता पर विचार कर सकें। आपके इस अद्वितीय जीवन व्रत से कहां तक हमने लाभ उठाया है, हमारे पारिवारिक, सामाजिक और अन्य जनों और उनके भिन्न, पशु, उद्भिद् और भौतिक जगत् ने क्या २ लाभ उठाया है, उस पर विचार कर सकें। कहां तक हमने आपके इस महाव्रत में अपने तन मन और धन आदि को अर्पण करके आपकी शुभ इच्छा अथवा विकास के महा कल्याणकारी नियम को पूरा किया है, उस पर विचार कर सकें। कहां तक हमने आप की जीवन व्रत विषयक महान् आकांक्षा को अपने वा किसी और के लिए सफल होने नहीं दिया, और ऐसा करके अपना और औरों का नाश किया है, उस पर विचार कर सकें। हे देव! ऐसा हो कि आपके देव प्रभाव हमारे हृदयों को स्पर्श करके उनमें उच्च भाव और उच्च संकल्प उत्पन्न करे और आपके सम्बन्ध में हमारी एक वा दूसरी नीच गति का बोध देकर उस के लिए हमें दुखी और अशान्त करें और हमारे हृदयों के विकारों को नष्ट करें। हे भगवन्! आप के प्रति हमारे हृदयों में श्रद्धा, अनुराग, कृतज्ञता वा सेवा विषयक भाव उत्पन्न अथवा अधिक उन्नत हों, और हम आप के शुभ आशीर्वाद को अधिक से अधिक लाभ करने के योग्य हों।

हे देव! ऐसा हो, कि यह महा यज्ञ हमारे लिए जहां तक सम्भव हो सफल हो, और हमारे अन्य सामाजिक जनों में उच्च आकांक्षाओं, उच्च संकल्पों, उच्च विचारों और उच्च त्यागों और उच्च जीवन का लाने वाला हो, और देवसमाज की पुष्टि और उन्नति का हेतु हो।

देव गुरु आरती

(खड़े होकर)

जय सत्य औ' शुभ अनुरागी, जय देव रूप धारी ;
सत्य औ' शुभ के हेतु, एक अतुल त्यागी।
जय २ देव गुरु ॥१॥

जय मिथ्या और अशुभ संग, अतुल युद्ध कर्ता ;
उन्हें पराजित करके, सत्य की जय कर्ता।
शुभ की जय कर्ता।
जय २ देव गुरु ॥२॥

जय देव ज्योति से पूरण, जय देव ज्योति दाता ;
आत्म-तिमिर के हर्ता, आत्म-ज्ञान दाता।
जय २ देव गुरु ॥३॥

जय देव तेज से पूरण, जय देव तेज दाता ;
नीच गति के हर्ता, सत्य मोक्ष दाता।
जय २ देव गुरु ॥४॥

जय देव तेज संचारक, जय पाप मैल हर्ता ;
हिरदय निर्मल कर्ता, पवित्र रूप दाता।
जय २ देव गुरु ॥५॥

जय उच्च भाव उत्पादक, जय उच्च गति दाता ;
पूरण आत्म-विकासक, आत्मिक बल दाता।
जय २ देव गुरु ॥६॥

जय सकल सत्य के पोषक, जय सब मिथ्या हर्ता ;
सकल हितों के साथी, समुचित सुख दाता।
जय २ देव गुरु ॥७॥

जय जीवन रस संचारक, जय अमृत दाता ;
आत्म-पतन के नाशक, जय जीवन दाता।
जय २ देव गुरु ॥८॥

जय एक उपास्य सभों के, जय आत्म-तत्व ज्ञाता ;
सत्य धरम के शिक्षक, पूरण हित कर्ता।
जय २ देव गुरु ॥९॥

जय अतुल दान के दाता, जय देव रूप धारी ;
दान तुम्हारा पाकर, धन्य हों नर नारी।
जय २ देव गुरु ॥१०॥

देव धर्म प्रवर्तक का जीवन संगीत

परम लक्ष्य मेरा पूरन हो,
जीवन व्रत मेरा पूरन हो।

सकल विभागों मे नेचर के, उच्च गति प्रद परिवर्तन हो ;
नीच गति हो विनष्ट दिन दिन, श्रेष्ठ मेल उन में उत्पन्न हो ॥ १ ॥

परम लक्ष्य मेरा पूरन हो,
जीवन व्रत मेरा पूरन हो।

आत्म-तिमिरहर देव ज्योति मम,
आत्म-प्रकाशक देव ज्योति मम्,
आत्म-बोध प्रद देव ज्योति मम्,
चारों दिग वह परकीरण हो,

तिमिर से निकले जन अधिकारी,
आत्म रोग देखे अधिकारी,
आत्म-रूप देखें अधिकारी,
आत्म पात् देखे अधिकारी,
आत्म हित देखे अधिकारी,
आत्म-ज्ञान उन मे उत्पन्न हो।
सत्य धर्म का ज्ञान उत्पन्न हो ॥२॥

परम लक्ष्य मेरा पूरन हो,
जीवन व्रत मेरा पूरन हो।

उच्च घृणा प्रद देव तेज मम्,
उच्च दुख प्रद देव तेज मम्,
नीच राग हर देव तेज मम्,
नीच घृणा हर देव तेज मम्,
चारों दिग वह परकीरण हो;

उच्च घृणा पावें अधिकारी,
उच्च दुख पावें अधिकारी,
नीच राग त्यागें अधिकारी,
नीच घृणा त्यागे अधिकारी,
आत्म-रोग से निस्तारन हो।
आत्म पात् से निस्तारन हो।
नीच गति से निस्तारन हो ॥३॥

परम लक्ष्य मेरा पूरन हो,
जीवन व्रत मेरा पूरन हो।

उच्च भाव प्रद देव तेज मम,
उच्च राग प्रद देव तेज मम्,
चारों दिग वह परकीरण हो;

उच्च भाव पावें अधिकारी,
उच्च राग पावें अधिकारी,
उच्च अंग पावे अधिकारी,
उच्च गति पावे अधिकारी,
उच्च रूप उनमें उत्पन्न हो।
श्रेष्ठ रूप उनमें उत्पन्न हो।
आत्म बल उनमें उत्पन्न हो।
जीवन बल उनमें उत्पन्न हो ॥४॥

परम लक्ष्य मेरा पूरन हो,
जीवन व्रत मेरा पूरन हो।

देश देश औ' नगर नगर में, देव ज्योति का परचारन हो;
नगर नगर औ' गांव गांव में, देव तेज का परचारन हो;
देव समाज हो उन्नत दिन दिन, देव राज नित विस्तीरन हो ॥५॥

परम लक्ष्य मेरा पूरन हो,
जीवन व्रत मेरा पूरन हो।

भावार्थ

मेरा जीवन व्रत पूरा हो।

मेरी देव शक्तियों के देव प्रभावों के द्वारा नेचर के सारे विभागों में जहां २ तक संभव हो, उच्च परिवर्तन उत्पन्न हो, और उनमें एक दूसरे के सम्बन्ध में जिस २ प्रकार की नीच गतियां काम कर रही हैं, वह जहां तक संभव हो, नष्ट हों, और उन में श्रेष्ठ मेल उत्पन्न हो।

मनुष्यों के आत्माओं के अन्धकार को दूर करने और उनके असल रूप को दिखाने वाली जो मेरी देव ज्योति है, उसकी किरणें मेरे चारों ओर फैलें, और अधिकारी लोग उन्हें अपनी २ योग्यता के अनुसार अपने २ आत्माओं में लाभ करके अपने २ आत्मा के सच्चे रूप और उसकी सच्ची अवस्था का ज्ञान लाभ करें, और उन्हें सच्चा आत्म-ज्ञान वा सत्य धर्म का ज्ञान प्राप्त हो।

मेरे देव तेज के द्वारा आत्मा में सुख विषयक नीच अनुरागों और उसके उलट दुःख विषयक नीच घृणाओं के लिए जिस उच्च घृणा और उच्च दुःख की उत्पत्ति होती है, उसकी किरणें मेरे चारों ओर फैलें, और जो २ लोग जहां २ तक उन किरणों के पाने और ग्रहण करने की योग्यता रखते हों, उनके भीतर मेरे देव तेज की यह किरणें प्रवेश करें, और उनके द्वारा उन्हें अपनी २ योग्यता के अनुसार आत्मिक रोगों और आत्मिक पतन से सच्ची मोक्ष प्राप्त हो, और मेरे देव तेज से मनुष्यों में जिन उच्च भावों वा जिन उच्च अनुरागों की उत्पत्ति हो सकती है, उसकी किरणें मेरे चारों ओर फैलें, और जो २ अधिकारी आत्मा उन्हें अपनी २ योग्यता के अनुसार जहां २ तक ग्रहण कर सकते हों, उन्हें वह ग्रहण करें, और इस विधि से उनके आत्माओं में एक वा दूसरे प्रकार के जीवन दायक उच्च भावों वा उच्च रागों का विकास हो।

प्रत्येक देश और प्रत्येक नगर और प्रत्येक गांव में मेरी देव ज्योति और देव तेज का प्रचार हो, जिस से जहां एक ओर देव समाज की दिनों दिन उन्नति हो, वहां दूसरी ओर सच्चा देवराज इस दुनिया में स्थापित हो।

परिशिष्ट

१. अनुचित हानि विषयक परिशोध तत्व*

प्र०—भगवन् ! अनुचित हानि विषयक परिशोध किसे कहते हैं ?

उ०—अपहरण विषयक किसी नीच क्रिया के विकारों से शुद्धि लाभ करने को अनुचित हानि विषयक परिशोध कहते हैं।

प्र०—अपहरण किसे कहते हैं ?

उ०—किसी के धन, किसी की सम्पत्ति, किसी के पदार्थ, किसी के मान, किसी के यश, किसी की स्वास्थ्य, किसी के रूप, किसी के सद्गुण, किसी के सुख, किसी की शान्ति, किसी की आयु आदि को अपनी किसी **नीच गति** के द्वारा हर लेने को अपहरण कहते हैं। ऐसे सब प्रकार के अपहरण पाप वा अपराध कहलाते हैं।

प्र०—मनुष्य जगत् में तो यह अपहरण बहुत फैला हुआ है ?

उ०—निश्चय! मनुष्य के लिए अपनी किसी अनुभव, वासना, उत्तेजना वा अहं शक्ति का दास होकर और किसी मिथ्या विश्वास वा अज्ञानता के वशीभूत होकर किसी अन्य मनुष्य, पशु, उद्भिद् और भौतिक अस्तित्व के सम्बन्ध मे **नीचगति** ग्रहण कर के एक वा दूसरे प्रकार का **अपहरण** करना अवश्यम्भावी है।

प्र०—क्या कोई मनुष्य अपनी अपहरण विषयक किसी क्रिया से **मोक्ष** भी लाभ कर सकता है ?

---

*हानि परिशोध के विषय मे परम् पूजनीय भगवान् देवात्मा की अन्तिम शिक्षा और साधनो आदि का 'देव शास्त्र' के तीसरे खंड के पचीसवे अध्याय के पृष्ठ ३६० से ४०४ तक और पंतीसवें अध्याय के पृष्ठ ४६१ से ४६७ तक में वर्णन है, उन का भी पाठ करें।

उ०—हां, यदि किसी आत्मा में उसकी किसी अपहरण मूलक गति के सम्बन्ध में कोई सत्य और यथेष्ट बोध उत्पन्न हों, तो वह निश्चय अपनी ऐसी क्रिया और उसके विकार से भी मोक्ष लाभ कर सकता है।

प्र०—वह बोध क्या हैं ?

उ०—वह बोध चार प्रकार के हैं :—

(१) विवेक (२) स्वीकृति (३) घृणा, और (४) दुःख वा परिताप विषयक।

प्र०—इन चारों की आप यदि कुछ संक्षिप्त व्याख्या करें, तो बड़ी कृपा हो।

उ०—(१) किसी के सम्बन्ध में अपनी किसी पाप-मूलक वा अनुचित क्रिया को पाप-मूलक वा अनुचित क्रिया जानना और मानना, विवेक कहलाता है।

(२) जिस किसी जन के सम्बन्ध में कोई पाप वा अपराध किया गया हो, उसके समीप यथा सम्भव मुख वा लेख के द्वारा उसे स्वीकार करने के योग्य होना स्वीकृति विषयक बोध कहलाता है।

(३) अपने किसी पाप के लिए अपने हृदय में समुचित रूप से ग्लानि अनुभव करना उसके सम्बन्ध में घृणा बोध कहलाता है।

(४) अपने किसी पाप के लिए समुचित रूप से दुखी वा परितप्त होना उसके सम्बन्ध मे दुख वा परिताप बोध कहलाता है।

अपने किसी पाप के सम्बन्ध मे इन बोधों के भली भान्त जाग्रत होने पर कोई मनुष्य केवल यही नहीं, कि उस पाप से विरत होकर उसे त्याग करता है, किन्तु अपने हृदय में उस समय तक आराम नहीं पाता, जब तक वह उस के विकार से भी जहां तक सम्भव हो

अपनी शुद्धि लाभ नहीं करता। इसलिए वह अपनी किसी ऐसी अपहरण विषयक क्रिया के लिए परिशोध करने के निमित्त तैयार हो जाता है, और पूर्ण रूप से ऐसे किसी परिशोध के करने पर उसके विकार से शुद्धि लाभ करता है। जब तक किसी पापी में अपने किसी पाप के सम्बन्ध में यह बोध यथेष्ट रूप से जाग्रत न हो, तब तक उस पाप अथवा उसके विकार से उसे मोक्ष नहीं मिलती।

प्र०—इन बोधों के उत्पन्न होने पर कोई मनुष्य अपने किसी अपहरण विषयक विकार से शुद्धि लाभ करने के लिए क्या करे?

उ०—यदि उसने प्रवंचना वा ठगी वा चोरी आदि के द्वारा किसी का धन वा कोई अन्य पदार्थ अपहरण किया हो, अथवा किसी कर्त्तव्य विषयक त्रुटि से किसी के धन वा किसी पदार्थ की हानि की हो, तो वह यथा सम्भव उसे वह धन वा पदार्थ कम से कम उचित व्याज के साथ लौटा दे, और उसके सन्मुख अपने ऐसे पाप के लिए सच्चे शोक का प्रकाश करे। और उसके द्वारा किसी हानि-प्राप्त जन ने अपने हृदय में जितना कष्ट पाया हो, उतना कष्ट वह आप भी अनुभव करे। और यदि उसने किसी को अपनी किसी बुरी क्रिया से केवल हार्दिक दुःख वा कष्ट ही पहुंचाया हो, तो वह अपनी ऐसी क्रिया के लिए उतना दुःख अनुभव करे, कि जितना उसने उस क्रिया से किसी और को पहुंचाया हो। इसी प्रकार यदि किसी के सम्बन्ध में उसने दुश्चिन्ता की हो, तो उसके लिए अपने हृदय में समुचित कष्ट अनुभव करे।

प्र०—यदि किसी ने किसी के धन वा अन्य पदार्थ को अपहरण किया हो, परन्तु उस जन का उसे कुछ पता ना हो, वा वह मर गया हो, तो उस के लिए वह किस प्रकार परिशोध करे?

उ०—वह उसके किसी उचित वारिस को वह धन, धरती वा पदार्थ आदि दे दे, और यदि उसका भी पता न लगे वा उसका कोई वारिस न हो, तो उसे उसके नाम से किसी साधारण हितकर संस्था को देकर किसी शुभ काम में लगा दे।

प्र०—जहां पशु जगत् के जीवों के सम्बन्ध में कोई पाप किया गया हो, वहां उसका कोई जन क्योंकर परिशोध करे ?

उ०—वहां वह जन अपनी ऐसी घृणित क्रियाओं को स्मरण करके प्रति दिन चिन्तन वा विचार के द्वारा,

(१) अपने हृदय में दुःख उत्पन्न करने,

(२) ऐसे जीव वा जीवों के शुभ के लिए कामना करने,

(३) ऐसे जीव वा जीवों की जाति के और जीवों की एक वा दूसरे प्रकार की सेवा करने,

(४) अन्य जनों को उसी प्रकार की अनुचित क्रिया से बचाने, के साधन ग्रहण करके अपने ऐसे पाप वा पापों का परिशोध करे।

प्र०—यदि किसी ने किसी जन के सम्बन्ध में कोई ऐसा पाप किया हो, जिसका धन के द्वारा वह कोई परिशोध न कर सकता हो, तो क्या उस जन के सम्बन्ध में उसे अपने हृदय में दुःख उत्पादक साधनों के भिन्न कोई और साधन करना भी आवश्यक है ?

उ०—हां, उसे अपनी ऐसी प्रत्येक दुष्क्रिया को स्मरण करके उसके प्रति घृणा उत्पन्न करने और अपने आप को घृणित रूप में देखने और उस से लज्जित और दुःखी होने के भिन्न, उसने जिस २ जन के सम्बन्ध में ऐसा पाप किया हो, उसके समीप, सम्भव होने और उचित समझे जाने पर, वह मुख वा लेख के द्वारा उसका दुःख पूर्वक बार २ वर्णन करे। ऐसे साधनों से दुखी वा हानि-प्राप्त जन के हृदय में उसके सम्बन्ध में जो घृणा पैदा हो चुकी है, वह धीरे २ कम होती है, और उनके लगातार जारी रखने से समय के साथ बिल्कुल नष्ट भी हो जाती है।

प्र०—क्या परिशोध विषयक साधनों में हानि वा दुःख-प्राप्त जन के हृदय से ऐसे घृणा का दूर करना आवश्यक है ?

उ०—हां, आवश्यक है।

प्र०—क्यों ?

उ०—इसलिए कि तुम्हारी जिस किसी अनुचित क्रिया से उसके हृदय में तुम्हारे सम्बन्ध में कोई घृणा उत्पन्न हुई हो, उसकी इस घृणा की जब तक लहरें उत्पन्न होती रहेंगी, तब तक वह तुम्हारे आत्मा के लिए हानिकारक होती रहेंगी, इसलिए तुम्हें अपने आत्मा को इस हानि से बचाने के निमित्त अपने परिशोध विषयक साधनों के द्वारा उनकी शान्ति करना नितान्त आवश्यक है। और यह परिशोध विषयक साधन तभी पूरा हो सकता है, जब कि हानि वा दुःख-प्राप्त जन के हृदय में परिशोध कर्ता के सम्बन्ध में जो घृणा वर्तमान हो, वह पूर्णतः नष्ट हो, और उसके सम्बन्ध में उसके भीतर जो दूरी पैदा हो गई है, वह चली जाय, और उस विषय में दोनों में मेल वा एकता स्थापन हो।

प्र०—इस मेल के लाने में क्या कोई सेवा विषयक साधन भी सहायकारी हो सकता है ?

उ०—हां, किसी ऐसे जन की यथा सम्भव एक वा दूसरी उचित सेवा वा ऐसा सम्भव न होने पर, उसके प्रिय किसी शुभ काम के करने से उसके हृदय से घृणा कम होती है।

प्र०—क्या किसी के हृदय में किसी के लिए अनुचित घृणा भी उत्पन्न होती है ?

उ०—हां, किसी मिथ्या विश्वास वा ईर्षा आदि किसी अनुचित भाव से परिचालित होकर जब कोई जन किसी के सम्बन्ध में अपने हृदय में कोई घृणा वा कष्ट अनुभव करता है, तब उसकी यह घृणा अनुचित घृणा होती है, और इसीलिए ऐसा जन जिस किसी के सम्बन्ध में ऐसी अनुचित घृणा अनुभव करता है, उस से उस जन के आत्मा की तो कोई हानि नहीं होती; किन्तु इस प्रकार की घृणा करने वाले के आत्मा की अवश्य हानि होती है, और वह अपनी इस अनुचित घृणा

को और जिन २ लोगों में संचार कर देता है, उससे उनके आत्माओं को भी हानि पहुंचती है। इसलिए किसी के हृदय में अपनी इस अनुचित घृणा के विषय में सच्चे बोध के जाग्रत होने पर उसके लिए उसका परिशोध करना भी आवश्यक है।

प्र०—पापों के परिशोध के सम्बन्ध में ऐसी सत्य शिक्षा तो आज तक पृथ्वी में आपके भिन्न किसी ईश्वर वा मनुष्य ने नहीं दी।

उ०—ईश्वर तो एक कल्पित अस्तित्व है, और कल्पित अस्तित्व के लिए कोई शिक्षा देना ही असम्भव है, परन्तु उसके विश्वासियों ने उसके वा अपने वा किसी अन्य के नाम से इस विषय में भी बहुत झूठी शिक्षाएं दी हैं। कितनों की यह शिक्षा है, कि तुम नाना मनुष्यों के सम्बन्ध में नाना प्रकार के अत्याचार करो—उन्हें खूब सताओ, खूब दुःख दो, नाना प्रकार से उनकी हानि करो, उनके भीतर अपने लिए गहरी घृणा पैदा करो, पशुओं को तरह २ का अनुचित कष्ट पहुंचाओ, उन्हें अपने आहार वा अपने किसी इष्ट देवता वा देवी की प्रसन्नता के लिए वध करो, और उनकी लाशों को काट २ कर कच्ची वा पकाकर खाओ, उद्भिद और भौतिक जगत् के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार की हानियां करो—परन्तु यदि मरते समय तक भी तुम कल्पित ईश्वर के एक कल्पित इकलौते पुत्र को अपना परित्राता मानलो वा कहदो, तो यही नहीं, कि तुम्हारे पापों से तुम्हारे आत्मा की कोई हानि न होगी, और तुम्हें अपने सब पापों के लिए क्षमा मिल जायगी, किन्तु कल्पित ईश्वर तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हें बहुत सुखों से भरपूर किसी स्वर्ग वा वैकुन्ठ में निवास प्रदान करेगा। अथवा यदि तुम दो चार बून्दें किसी विशेष नदी के जल की पीलो, वा एक बार अमुक नाम उच्चारन कर दो, तो भी तुम्हारे पापों से तुम्हारे आत्मा की कुछ हानि न होगी, और तुम स्वर्ग में जाकर वास करोगे, अथवा यदि किसी विशेष नगर वा स्थान में तुम्हारी मृत्यु हो, तो भी तुम्हारे पाप तुम्हारा कुछ न कर सकेंगे, और तुम मरने के अनन्तर किसी वैकुन्ठ लोक में पहुंचकर पूर्ण आनन्द

सम्भोग करोगे। कुछ ईश्वर वादी यह शिक्षा देते हैं, कि ईश्वर बड़े दयालु हैं, उन से जब कोई पापी यह प्रार्थना करता है, कि आप मुझ पर दया करें, और मेरे पापों को क्षमा कर दें, तो वह दयाभाव से परिचालित होकर उसके पापों को क्षमा कर देते हैं, और फिर उसका आत्मा अपने ऐसे पापों के सम्बन्ध में किसी हानि को प्राप्त नहीं होता। एक समय में एक सम्प्रदाय के मुखिया के सैंकड़ों चेले रुपए ले २ कर ईश्वर की ओर से उनके पापों के सम्बन्ध में क्षमा पत्र बेचा करते थे। इसी प्रकार नाना झूठे प्रायश्चितों के नाम से हज़ारों पुरोहित मूर्ख लोगों को लूटते रहे हैं और अब भी लूटते हैं; कल्पित परमेश्वर जी चालाक लोगों के हाथ में हमेशा से मोम की नाक रहे हैं, जिस ने चाहा उसी ने उनकी ओर से कोई बात घड़ कर प्रचार कर दी। कितने ही ईश्वर के पुजारियों में यह विश्वास प्रचलित है, कि कोई जन चाहे कितने ही पाप क्यों न करे, परन्तु उनके आखरी पैग़म्बर की सिफारिश से ख़ुदा उसके सारे गुनाहों को बख़्श देगा। किसी ईश्वर वादी सम्प्रदाय वा समाज में उस की अपनी रक्षा के लिए पाप करना बहुत आवश्यक समझा गया है। ऐसी मिथ्या शिक्षाओं के प्रचलित रहने से मनुष्यों में न तो पाप विषयक नाना बोधों के सम्बन्ध में कोई सत्य ज्ञान उत्पन्न हुआ, और न उन बोधों के लिए कोई आकांक्षा जाग्रत हुई, और न उन पापों से उन्हें कोई सच्ची मोक्ष ही प्राप्त हुई, क्योंकि विज्ञान-मूलक सत्य धर्म की सत्य शिक्षा के विना ऐसा होना ही असम्भव था।

मनुष्य इस विश्व का उसी प्रकार एक अंश है, जिस प्रकार उसके हाथ, पांव, हृदय पिंड, मस्तिष्क, फेफड़े, पेट, यकृत आदि उसके शरीर के अंश हैं। यदि हाथ, पांव, मस्तिष्क आदि के लिए पेट सेवाकारी न बने, अर्थात् वह आहार को अपने रस से न बदले, तो इस स्वार्थ परता से वह नेचर के अच्छे नियम के विरुद्ध जाकर केवल यही नहीं, कि और अंगों को हानि पहुंचाएगा, किन्तु अपनी भी बहुत बड़ी हानि करेगा। इसी प्रकार यदि उसके हाथ पेट को फाड़ कर पाक स्थली

वा अन्तड़ियों को बाहर निकालकर फेंक दे, तो उसे मार कर वह आप भी न जी सकेंगे। इसी महान् नियम के अनुसार जब कोई मनुष्य विश्व के किसी विभाग के सम्बन्ध में अपनी किसी अनुभव, वासना, उत्तेजना वा अहं शक्ति के वशीभूत होकर कोई **अनुचित हानि** करता वा करने का आकांक्षी बनता है, तब उसके द्वारा वह **अपने आत्मा की हानि** करता है। यह महा नियम विश्व के प्रत्येक विभाग में अटल रूप से काम कर रहा है। इसी लिए जो मनुष्य किसी और के लिए **सेवाकारी** नहीं बनता, अथवा अनुचित रूप से **हानिकारक** बनता है, वह अपनी इस अधोगति से आप अपनी हानि करता है, और पहले की अपेक्षा बुरी दशा अर्थात् **पतन** को प्राप्त होता है। और इसी गति में चलकर और उसके द्वारा अपने आत्मा की शरीर निर्माणकारी शक्ति को धीरे २ क्षय करके पूर्णतः नष्ट हो जाता है। शेर, भेड़िए, सांप, खटमल, मच्छर, पिस्सू आदि जीव जो अपनी क्षुधा की तृप्ति के लिए और जीवों को वध करते वा उनका खून पीने के लिए उन्हें अनुचित कष्ट पहुंचाते रहते हैं, उससे उनकी शरीर निर्माणकारी शक्ति धीरे २ क्षय होते २ उन्हें इस दशा में पहुंचा देती है, कि उनकी जीवनी शक्ति अपने स्थूल शरीर की मृत्यु पर अपने लिए या तो कोई नया शरीर निर्माण ही नहीं कर सकती, वा ऐसा विकलांग और दुर्बल शरीर निर्माण करती है कि जो कुछ समय के अनन्तर मर जाता है और उसके साथ ही उसकी इस शक्ति के पूर्णतःनष्ट हो जाने पर उनका अपना अस्तित्व भी नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जो लोग एक ओर विश्व के और विभागों के लिए **सेवाकारी** नहीं बनते वा नहीं बन सकते, और दूसरी ओर अपनी एक वा दूसरी वासना वा उत्तेजना आदि की तृप्ति के लिए और अस्तित्वों की **अनुचित हानि** करते, अथवा उन्हें अनुचित **कष्ट वा दुःख** देते रहते हैं, वह अपनी ऐसी **नीचगति** से धीरे २ अपने आत्मा की शरीर निर्माणकारी शक्ति को क्षय करते रहते हैं, और इस पृथ्वी में भी कई प्रकार के अवांछनीय दुःख पाते

हैं, और अपने स्थूल शरीर की मृत्यु के अनन्तर अधम वा किसी नीच लोक के वासी बन कर और उच्च बनने के अयोग्य होने पर धीरे २ घुल २ कर एक दिन पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। विश्व वा नेचर के उपरोक्त अटल नियम के तोड़ने का कैसा भयंकर परिणाम !!

तब एक ओर **नीच गति-मूलक प्रत्येक पाप वा अपराध** और दूसरी ओर **केवल स्वार्थ का जीवन** प्रत्येक मनुष्य के लिए जैसा कुछ **हानिकारक और विनाशकारी है,** उसका अनुमान किया जा सकता है। इस परम सत्य से अन्धे रह कर ईश्वर वादी और अन्य शिक्षकों ने पाप और उससे मुक्ति के विषय में जिस २ प्रकार की मिथ्या शिक्षाएं दी हैं, उन पर विश्वास करके और पाप और उसके फलों और पाप के परिशोध के विषय में नाना बोधों की देव धर्म प्रवर्तक जो विज्ञानमूलक सत्य शिक्षा देते हैं, उससे अज्ञानी वा उदासीन रह कर लाखों और करोड़ों लोग अपने २ आत्माओं की जैसी कुछ हानि कर रहे हैं, उसका भी अनुमान हो सकता है।

प्र०—निश्चय, इस परम श्रेष्ठ शिक्षा से अन्ध वा अज्ञानी रहना मनुष्य मात्र के लिए अत्यन्त दुर्भाग्य का विषय है। क्या परिशोध के द्वारा कोई आत्मा किसी पाप के विकार से पूर्णतः उद्धार लाभ कर सकता है?

उ०—हां, कई पापों के विकारों से मनुष्य पर्णत उद्धार भी पा सकता है, और कई से यद्यपि बहुत कुछ उद्धार पाता है, तथापि उसमें उनका कुछ न कुछ बुरा प्रभाव रह जाता है। जैसे शारीरिक रोगों में कई रोगों से पूर्णतः उद्धार हो जाता है, और कई रोगों से नीरोग हो जाने पर भी उनके बुरे प्रभावों से शरीर को उसकी सारी आयु के लिए भी हानि पहुंच जाती है, वैसे ही आत्मिक रोगों का भी हाल है।

प्र०—जिन जनों में जन्म काल से ही किसी २ पाप के लिए कोई रुचि नहीं होती, उसका कारण क्या है?

उ०—उन्हें उस पाप के सम्बन्ध में अपने पूर्वजों से जो घृणा

मिली हुई होती है, उसके कारण वह उस पाप में प्रवृत्त नहीं होते; परन्तु वही लोग और कितने ही प्रकार के पाप करते रहते हैं। किसी के माता पिता आदि पूर्वज जिस २ पाप के लिए घृणा बोध करते रहे हों, उनकी कुछ सन्तान को जैसे यह घृणा भाव उनकी उत्पत्ति से ही प्राप्त होता है, वैसे ही ऐसे पूर्वजों में से जो २ जन कोई विशेष पाप करते रहे हों, उनके करने के लिए भी उनकी एक वा दूसरी सन्तान में रुचि उत्पन्न हो जाती है।

प्र०—यदि किसी जन ने अपने पूर्वजों से किसी पाप के लिए अपने आत्मा में स्वभाव जात कोई घृणा लाभ की हो, तो क्या वह उस पाप से सदा बचा रह सकता है?

उ०—हां, कोई २ जन प्रतिकूल अवस्थाओं में पड़कर भी सदा बचा रह सकता है, और कोई नहीं रह सकता। यदि किसी में यह घृणा भाव उन प्रलोभनों की शक्तियों की तुलना में बहुत अधिक हो, कि जिन में वह पड़ा हो, तो वह बचा रहेगा, अन्यथा भ्रष्ट हो जाएगा। इसी लिए जहां कई लोग कई प्रलोभनों में पड़कर भी एक २ पाप नहीं करते, वहां दूसरे लोग जिन में यह घृणा भाव बहुत नहीं होता, वह किसी प्रलोभन वा कुसंग में पड़कर पतित हो जाते हैं।

प्र०—कुछ ऐसे लोग भी तो होते हैं, कि जो उच्च प्रभावों में रहकर एक २ प्रकार के पाप से विरत हो जाते हैं, परन्तु उस प्रकार के जो २ पाप वह पहले कर चुके हैं, उनका कोई परिशोध नहीं करते?

उ०—हां, ऐसे जन भी होते हैं। यदि वह अपने पहले किए हुए पापों के सम्बन्ध मे आवश्यक परिशोध करने के योग्य न बनें, तो उनके विकार से उनका उद्धार नहीं हो सकता।

प्र०—ऐसे विकार के रहने से उनकी क्या हानि होती है?

उ०—उनके आत्मा में एक ओर उच्च शक्तियो के विकास का पूर्णतः वा अधिकांश रूप से मार्ग बन्द हो जाता है, और दूसरी ओर

कई और पापों से बचने के लिए या तो कोई आकांक्षा ही नहीं जागती, वा यदि ऐसी आकांक्षा उत्पन्न हो चुकी हो, तो वह बलवती नहीं होती, वा धीरे २ मर जाती है।

प्र०—तब तो मनुष्य के लिए अपने प्रत्येक प्रकार के पापों के विकारों से शुद्धि लाभ करना नितान्त आवश्यक है।

उ०—हां, जहां तक जिस के लिए सम्भव हो, उसके लिए ऐसी शुद्धि का लाभ करना नितान्त आवश्यक है।

२—प्रार्थना तत्व

प्र०—भगवन्! प्रार्थना किसे कहते हैं?

उ०—जब कोई जन अपनी किसी आन्तरिक आकांक्षा से परिचालित होकर और किसी अन्य को अपनी उस आकांक्षा के पूर्ण करने में सामर्थ्य जान कर उस तक अपनी उस आकांक्षा को पहुंचाता है, तब उस आकांक्षा के प्रकाश को प्रार्थना कहते हैं।

प्र०—प्रार्थना कितने प्रकार की होती है?

उ०—मनुष्य अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में नाना प्रकार की आवश्यकताएं वा नाना प्रकार के अभाव रखता है, इसलिए उन के सम्बन्ध में उसकी प्रार्थनाएं भी नाना प्रकार की होती हैं। यथा:— किसी दुख के बोध करने पर उसकी निवृत्ति के लिए किसी से प्रार्थना, किसी सुख की वासना होने पर उसकी प्राप्ति के लिए किसी से प्रार्थना; किसी के साथ किसी विवाद वा झगड़े के हो जाने और आवश्यक बोध करने पर उसके सम्बन्ध में किसी से न्याय की प्रार्थना, किसी विषय में कुछ जानने की आवश्यकता के बोध करने पर किसी से उसके सम्बन्ध में अवगति वा ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रार्थना; किसी काम के करने में अपने आप को अक्षम वा दुर्बल देखकर और उसके पूर्ण करने की आकांक्षा रखने पर, उसके सम्बन्ध में किसी और से बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना; इत्यादि, इत्यादि।

प्र०—क्या प्रत्येक मनुष्य अपने आप में किसी सच्ची और प्रबल आकांक्षा के अनुभव करने और उसकी पूर्ति में अपने आप को असहाय पाने पर, किसी और से सहाय चाहता है ?

उ०—हां, इस पृथ्वी में कोई मनुष्य ऐसा नहीं, जिस ने अपने एक वा दूसरे प्रबल अभाव के समय, उसकी निर्वृत्ति के लिए अपने आप को असहाय पाने पर, किसी और से सहाय पाने की आकांक्षा वा प्रार्थना न की हो; अथवा जो अपनी किसी सच्ची और प्रबल आकांक्षा को पूरा करने के निमित्त अपने आप को अयोग्य वा असमर्थ पाने पर किसी और से सहाय प्रार्थना नहीं करता।

प्र०—क्या प्रत्येक मनुष्य जिस किसी से जो कुछ प्रार्थना करता है, वह पूर्ण होती है ?

उ०—नहीं, जिस किसी प्रार्थना के पूर्ण होने के लिए जितने अंश अनुकूल अवस्था की आवश्यकता है, वह यदि विद्यमान हो, तो वह प्रार्थना पूर्ण होती है, अन्यथा नहीं होती। दृष्टान्त स्थल में, यदि तुम अपने हाथों से कोई ऐसा बोझ उठाना चाहते हो, कि जिस का उठाना तुम्हारी शक्ति से वाहर है, और जो जन तुम्हारे समीप हैं, उनमें से भी कोई तुम्हारे लिए अपना वल प्रयोग करना नहीं चाहता, अथवा जो जन अपने वल से तुम्हारी सहाय करना चाहता है, उसका वल इतना थोड़ा है, कि उसके वल की सहाय पाकर भी तुम उस बोझे के उठाने के योग्य नहीं हो सकते, तो ऐसी अवस्था में तुम उन से वा उससे प्रार्थना करके भी सफल काम नहीं हो सकते।

प्र०—कोई जन अपनी किसी प्रार्थना में सफल काम कब हो सकता है ?

उ०—जब वह अपनी प्रार्थना किसी ऐसे अस्तित्व तक पहुंचावे कि जो

(१) सच मुच हो, और कल्पित न हो,

(२) उसकी प्रार्थना के पूर्ण करने के लिए भली भान्त सामर्थ्य रखता हो,

(३) उसकी प्रार्थना को पूर्ण कर देना चाहता हो, और

(४) जिस तक उसकी प्रार्थना का भाव वा उसकी लहरे पहुंच सकती हों।

इन बातों के बिना कोई जन अपनी सच्ची प्रार्थना में सफल काम नहीं हो सकता।

प्र०—आत्मिक-कल्याण सम्बन्धी प्रार्थनाओं में तो लाखों लोग इन बातों पर कुछ ध्यान नहीं रखते ?

उ०—नहीं, क्योंकि प्रथम तो आत्मा और आत्मिक जीवन के विषय में करोड़ों जनों को कोई सत्य ज्ञान नहीं; दूसरे उनके विषय में अभी तक साधारण लोग अन्ध विश्वास रखना वा उसके अनुसार चलना आवश्यक समझते हैं। और इन विषयों में सत्य ज्ञान की अभी तक उन्हें कोई आवश्यकता बोध नहीं होती। इसीलिए वह मुंह से जिस बात के लिए अपने जिस किसी इष्ट देव से प्रार्थना करते हैं, वह या तो कल्पित अस्तित्व होता है, या उनकी प्रार्थना का विषय बहुधा ऐसा होता है, कि जिस का उनके अपने हृदय की आकांक्षा के साथ कुछ मेल नहीं होता, और अनेक बार सत्य के पूर्ण विरुद्ध होता है। दृष्टान्त स्थल में, लाखों लोग ईश्वर नामक जिस पुरुष तक अपनी प्रार्थनाएं पहुंचाते हैं, उसका कल्पना के भिन्न वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं। इसके भिन्न जिन कई प्रकार की आकांक्षाओं के सम्बन्ध में वह पहले से नियत शब्दों में वा किसी और विधि से प्रार्थनाएं करते हैं, उनके सम्बन्ध मे उनके हृदय में सचमुच की कोई आकांक्षा नहीं होती, और वह किसी प्रचलित प्रथा के अनुसार ऐसा करते हैं। फिर कई बार वह इन शब्दों के द्वारा जिस प्रार्थना का प्रकाश करते हैं, वह पूर्णतः मिथ्या होती है। यथा, जो लोग लाखों रुपए बैंक में और हजारों

रुपए महीने की आय रख कर भी यह प्रार्थना करते हैं, कि हे ईश्वर! तू हमें आज की रोटी दे; वह निश्चय प्रार्थना के साधन का पूरा २ मखौल करते हैं। इसी लिए प्रार्थना के नियम के पूरा होने के लिए जैसे यह आवश्यक है, कि

(१) जिससे प्रार्थना की जाय, वह कोई सच्चा अस्तित्व हो, और कोई कल्पित अस्तित्व न हो,

(२) वह किसी की किसी प्रार्थना के पूर्ण करने की सच्ची सामर्थ्य रखता हो,

(३) वह भली भान्त चाहता हो, कि उसके द्वारा किसी प्रार्थी की कोई शुभ प्रार्थना पूर्ण हो, वैसे ही

(४) यह भी आवश्यक है, कि प्रार्थना कर्ता जिस बात के लिए प्रार्थना करता हो, वह **सरल भाव** से करता हो, अर्थात् **सच मुच उस के हृदय में उस बात के लिए सच्ची आकांक्षा वर्तमान हो**, और जिस से प्रार्थना करता हो, उसके साथ उसके हृदय का ठीक **योग** हो, और वह उसी बात के लिए उससे प्रार्थना करता हो, कि जिसके पूर्ण करने की उसमें सामर्थ्य हो।

प्र०—यह आपकी पूर्णत. सत्य शिक्षा है। परन्तु नाना धर्म सम्प्रदायों के लाखों लोग जैसे एक ओर प्रार्थना विषयक इन सत्यों को नहीं जानते, वैसे ही दूसरी ओर प्रार्थना के नाम से **मिथ्या और कपटता** का आचरण करके अपने आत्मा को पापी, मलिन और कठोर भी बनाते रहते हैं।

उ०—हां, यही हाल है। यदि किसी मनुष्य मे अपनी किसी विनाशकारी नीच गति के सम्बन्ध मे कोई बोध न जन्मा हो, और जो अपनी ऐसी गति मे सुख वा तृप्ति अनुभव करता हो, यहां तक, कि जब इसकी इस हानिकारक क्रिया से उसका कोई हितकर्ता क्लेश पाकर

उसकी इस शोचनीय अवस्था को उस पर प्रगट करता हो, तब वह अपनी उस नीच गति का साथी बन कर उलटा उसे समर्थन करता हो, तो फिर वह किस मुंह से उसके दूर होने के निमित्त किसी से प्रार्थना कर सकता है? परन्तु लाखों मनुष्य जिन में बड़े २ विद्वान् और पढ़े लिखे भी हैं, मिथ्या संस्कार वा अभ्यास के वशीभूत होकर वा दिखलावे के लिए ऐसी प्रार्थनाएं करते वा उनमें योग देते हैं, कि जो **पूर्णतः कपटता-मूलक** होती हैं। इसीलिए जब तक किसी जन के हृदय में अपनी किसी नीच गति के सम्बन्ध में **आवश्यक बोध** उत्पन्न न हों, तब तक वह उससे उद्धार के लिए, और जब तक उसमें किसी उच्च गति दायक शक्ति के लिए आकांक्षा न जाग्रत हो, तब तक उसकी प्राप्ति के लिए, किसी से **सरल भाव** के साथ प्रार्थना कर **नहीं** सकता। और यदि वह जान बूझ कर मुंह से ऐसी प्रार्थना करता है, तो वह उस के द्वारा **कपटता** का आचरण करके निश्चय अपने आत्मा को भ्रष्ट करता है।

प्र०—मनुष्य को अपने आत्मा के सम्बन्ध में किस २ बात के लिए प्रार्थना करनी चाहिए?

उ०—मनुष्य को अपने आत्मा के सम्बन्ध में प्रत्येक ऐसी विनाशकारी नीच गति से मोक्ष पाने और उच्च गति दायक किसी शक्ति में विकास लाभ करने के लिए प्रार्थना करनी उचित और आवश्यक है, कि जिससे उद्धार वा जिस की प्राप्ति के लिए उस में आकांक्षा जाग्रत हो गई हो। इसी प्रकार अपनी एक वा दूसरी विनाशकारी नीच गति को, उसके **बुरे और घृणित रूप में देखने** की योग्यता लाभ करने के लिए अथवा किसी उच्च गति दायक शक्ति वा भाव को **सुन्दर रूप में उपलब्ध करने** के लिए, उसे ऐसी **ज्योति** के लिए प्रार्थना करनी उचित है, कि जिसकी प्राप्ति के लिए उसमे **आकांक्षा** जाग चुकी हो। फिर जब ऐसी ज्योति के मिलने से, उसे अपनी **कोई बुरी गति बुरे रूप में** प्रतीत होने लगे, तब वह उससे **उद्धार** के निमित्त और

जब किसी उच्च भाव के लिए उसमें आकांक्षा जाग्रत हो जाय, तब वह उसके विकास के निमित्त बल की प्रार्थना कर सकता है।

प्र०—ऐसी प्रार्थना किस से करनी उचित है?

उ०—देवात्मा से, क्योंकि एक मात्र उन्हीं के द्वारा वह अपनी प्रत्येक प्रकार की विनाश वा विकासकारी गति के सम्बन्ध में आवश्यक उच्च ज्योति वा शक्ति लाभ कर सकता है; और एक मात्र वही ऐसी अमूल्य और अति आवश्यक ज्योति और शक्ति के पूर्ण आविर्भाव हैं।

प्र०—इस आत्मिक ज्योति और शक्ति का कोई सच्चा अभिलाषी जन उनसे किस प्रकार प्रार्थना करे?

उ०—प्रथम वह उन्हें भली भान्त स्मरण करे। फिर उनके महान् रूप को अपने सन्मुख रखकर और उनके साथ अपने हृदय को जोड़ कर अपने सच्चे भावों को बार २ उन तक पहुंचावे। इस क्रिया के द्वारा जब उसके इन भावों की लहरें उन तक पहुंचेंगी, तब उनकी ज्योति की किरणें वा उनके बल की लहरें उन से निकल कर उसके हृदय तक भी पहुँचेंगी। उनके पहुंचने पर उसके हृदय की अवस्था बदलेगी। उसका अन्धकार दूर होगा, और उसमे उनकी उच्च ज्योति प्रवेश करके उसे ज्योतिर्मान् करेगी और उनकी शक्ति उसमें बल संचार करेगी।

प्र०—किसी मनुष्य के हृदय से उसकी चिन्ता वा उसके भावों की लहरें निकल कर किसी और के हृदय तक क्योंकर पहुँच जाती हैं?

उ०—जिस प्रकार वायु के आघात से जल में लहरें उत्पन्न होती हैं और दूर २ तक चली जाती हैं, और शब्द के आघात से वायु मे लहरे उत्पन्न होती हैं और वह दूर २ तक चली जाती हैं, और ज्योति की लहरें व्योम (ईथर) में उत्पन्न होकर हज़ारों मीलों तक चली जाती हैं—सूर्य की किरणे इसी व्योम के द्वारा इस पृथ्वी तक पहुँचती हैं—इसी प्रकार मनुष्य के हृदय में जो भाव उत्पन्न होता है, उसकी लहरें भी इसी व्योम के द्वारा उस हृदय तक पहुँच जाती हैं, जिस के साथ उसका योग वा सम्बन्ध हो।

प्र०—यह तो बहुत विचित्र और हितकर नियम है।

उ०—हां, विश्व के इसी अटल नियम के अनुसार श्री देवगुरु भगवान् के कितने ही योग्य सेवक उनसे सैकड़ों कोस दूर रह कर भी अपनी सच्ची प्रार्थना के द्वारा उनसे ज्योति और बल लाभ करते हैं।

३. मंगल कामना तत्व

प्र०—भगवन्! मंगल कामना किसे कहते है?

उ०—मंगल, शुभ वा शिव वा हित वा भले को कहते हैं। और अपने वा किसी और के शुभ वा भले के लिए जो कामना की जाती है, उसे मंगल कामना कहते हैं।

प्र०—कोई जन अपने वा किसी और के लिए कब और किस प्रकार मंगल कामना कर सकता है?

उ०—जब उसके हृदय में अपने वा किसी और के सम्बन्ध में किसी दुःख वा शोक वा विषाद वा रोग वा पीड़ा वा विपद् के दूर होने वा किसी शारीरिक वा मानसिक दुर्बलता वा किसी विनाशकारी नीच गति से मोक्ष पाने वा किसी उच्च भाव की उत्पत्ति वा किसी उच्च लक्ष्य की सफलता के लिए कोई सच्ची प्रेरणा वा आकांक्षा उठती हो, और वह ऐसी प्रेरणा वा आकांक्षा के उठने पर जब उसके दूर वा प्राप्त होने के लिए अपने हृदय में ध्यान जमा कर लगातार कुछ समय तक बार २ कामना कर सकता हो, तब वह अपने वा किसी और के लिए मंगल कामना विषयक साधन करने के योग्य होता है।

प्र०—अपने किसी हार्दिक दुःख वा अपने शरीर के सम्बन्ध में कई प्रकार के रोगों वा क्लेशों का बोध तो सर्व साधारण जनों मे पाया जाता है, परन्तु अपनी किसी विनाशकारी नीच गति वा अपने किसी बुरे स्वभाव से मोक्ष वा अपने हृदय में किसी उच्च भाव की उत्पत्ति के लिए तो प्रायः लोगों में कोई प्रेरणा वा आकांक्षा देखी नहीं जाती।

उ०—ठीक है।

प्र०—यदि कोई जन किसी और के किसी शारीरिक रोग वा कष्ट वा किसी आत्मिक अभाव वा पाप वा हानि आदि के दूर होने वा उसकी किसी प्रकार की उन्नति के सम्बन्ध में अपने हृदय में कोई प्रेरणा उठती हुई अनुभव न करता हो, अर्थात् उस का हृदय किसी ऐसी प्रेरणा से पूर्णतः शून्य हो, तो क्या वह उसके लिए मंगल कामना नहीं कर सकता ?

उ०—नहीं। जब तक किसी और का अभाव तुम्हें अनुभव न हो, अथवा किसी और के दुःख में तुम्हारा हृदय दुःखी और उसकी किसी भलाई के लिए तुम्हारा हृदय आकांक्षी न हो, तब तक तुम्हारे भीतर वह शक्ति ही वर्तमान नहीं, कि जिस के द्वारा तुम शुभ कामना करके उसकी कोई सहाय कर सकते हो। और यदि तुम किसी के खुश करने वा किसी के सन्मुख दिखलावे के लिए मुंह वा लेख के शब्दों से उसका झूठ मूठ प्रकाश करो, तो तुम उस से उलटा आप कपटी वा प्रवंचक बन कर अपने आत्मा की हानि करते हो। सच्ची मंगल कामना केवल यही नहीं, कि किसी के लिए हानिकारक नही होती, किन्तु थोड़ी वा बहुत अवश्य हितकारक होती है।

प्र०—सच्ची मंगल कामना से किसी और का शुभ क्योंकर होता है ?

उ०—जबकि आत्मा की किसी शक्ति से ही सच्ची मंगल कामना उत्पन्न होती है, तब उसके प्रयोग से जैसे कामना कर्ता का शुभ होना आवश्यक है, वैसे ही जिसके वा जिनके लिए शुभ कामना की जाये, उसका वा उनका भी अनुकूल अवस्था में कुछ न कुछ वा पूर्ण शुभ होना आवश्यक है, क्योंकि किसी शक्ति का कार्य किसी प्रभाव वा फल के उत्पन्न करने के बिना नहीं रह सकता।

प्र०—किस २ अस्तित्व के लिए मंगल कामना की जा सकती है ?

उ०—ऐसे प्रत्येक जीवन-रहित और जीवन विशिष्ट अस्तित्व के सम्बन्ध में मंगल कामना का प्रयोग हो सकता है, कि जो कल्पित न हो, और कहीं न कहीं विद्यमान हो।

प्र०—क्या किसी निर्जीव पदार्थ पर भी मंगल कामना का प्रयोग हो सकता है ?

उ०—हां, यदि उसमें कुछ भी उच्च परिवर्तन की सम्भावना हो तो सच्ची मंगल कामना की शक्ति से उसे भी लाभ पहुंचता है।

स्मरण रक्खो कि विश्व के सब विभाग एक दूसरे से जुडे हुए होने के कारण उनके विविध प्रकार के अस्तित्व एक वा दूसरे के भले वा बुरे प्रभाव वहां तक लाभ करते रहते हैं, जहां तक उनके ग्रहण करने की उनमें योग्यता वर्तमान और उन्हें अवसर प्राप्त हो। इसलिए न केवल तुम्हारी मंगल कामना की शक्ति के द्वारा किन्तु यों भी तुम्हारे अस्तित्व से जो भले वा बुरे प्रभाव सूक्ष्म रूप में रात दिन निकलते रहते हैं, उनके द्वारा भी चुप चाप कितने ही अस्तित्व भला वा बुरा परिवर्तन ग्रहण करते रहते हैं। सुतरां तुम जिस घर में रहते हो, वह घर और उसके विविध पदार्थ जहां तक जितनी योग्यता रखते हैं, वहां तक वह तुम्हारे भले वा बुरे प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं, और अपनी बारी में यथा अवसर वही प्रभाव औरों तक पहुंचाते रहते हैं। संगत का नियम प्रत्येक जगत् में काम करता है। यही कारण है, कि उच्च प्रभाव दायक संगत में आकर कोई अस्तित्व योग्यता रखने पर उच्च बन जाता है, और नीच संगत के पतनकारी प्रभावों को ग्रहण करके पतित हो जाता है। इसी लिए जैसे उच्च और भली संगत से अधिकारी जन अपनी एक वा दूसरी पतित अवस्था से उद्धार लाभ करते हैं, वैसे ही बुरी संगत से नाना प्रकार के अस्तित्व पतित वा बुरे भी बन जाते हैं।

प्र०—तब तो किसी के लिए किसी की सच्ची मंगल कामना के प्रभाव लाभ करने के योग्य होना बहुत सौभाग्य का विषय है।

उ०—इसमें क्या सन्देह है।

प्र०—मंगल कामना के प्रभाव कहां २ तक पहुंचते हैं ?

उ०—यह प्रभाव निकट भी और बहुत दूर २ तक भी पहुंचते

हैं ? प्रार्थना तत्व के वर्णन में व्योम वा ईथर के भीतर चिन्ता और भाव के द्वारा लहरों के उत्पन्न होने और दूर तक चले जाने का विषय तुम जान चुके हो, उसके अब फिर दोहराने की आवश्यकता नहीं।

प्र०—हां, लहरों की उत्पत्ति और गति का नियम मुझे भली भान्त स्मरण है। परन्तु भगवन्! आप यह बतावे, कि मंगल कामना और प्रार्थना में क्या अन्तर है।

उ०—मंगल कामना के द्वारा कोई जन अपनी ही शक्ति का अपने वा किसी और के ऊपर प्रयोग करता है। परन्तु प्रार्थना के द्वारा वह अपने लिए **किसी और से** सहाय की भिक्षा मांगता है। मंगल कामना के द्वारा वह **अपनी वा किसी और की सहाय करता है,** और प्रार्थना के द्वारा वह **अपने लिए किसी और से सहाय चाहता वा प्राप्त करता है।**

प्र०—अपने लिए मनुष्य किस २ बात के लिए मंगल कामना कर सकता है ?

उ०—अपने लिए मनुष्य,

(१) नाना प्रकार के रोगों और कष्टों,

(२) नाना प्रकार की विपदों,

(३) नाना प्रकार की अपमृत्यु,

(४) किसी प्रकार की अकाल मृत्यु,

(५) किसी शारीरिक दुर्बलता,

(६) किसी पतनकारी नीच गति से निवृत्ति,

(७) किसी मानसिक शक्ति की उन्नति,

(८) किसी उच्च भाव की उत्पत्ति,

(९) किसी उच्च व्रत की सिद्धि,

(१०) किसी उच्च लक्ष्य विषयक किसी अभाव के निवारण, आदि के सम्बन्ध में मंगल कामनाएं कर सकता है।

प्र०—किसी और के सम्बन्ध में मनुष्य किन २ बातों के लिए मंगल कामनाएं कर सकता है ?

उ०—कोई मनुष्य योग्यता रखने पर अपने भिन्न

(१) किसी और मनुष्य के सम्बन्ध में भी उपरोक्त बातों के लिए,

(२) अपनी किसी समाज वा संस्था की उन्नति के लिए,

(३) अपने उपकारी वा सेवाकारी वा आश्रित जनों, पशुओं और पौदों और सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र और वायु आदि निर्जीव लोकों वा अन्य पदार्थों के लिए, और

(४) अपने विविध प्रकार के इस लोक वा अधम वा परलोक वासी पारिवारिक वा सामाजिक ऐसे सम्बन्धियों के लिए कि जो उसके उपकारी न भी हों, परन्तु जिन के किसी प्रकार के हित के लिए उसमें कोई आकांक्षा वर्तमान हो, मंगल कामनाएं कर सकता है।

प्र०—क्या प्रत्येक विषय में जो मंगल कामना की जाती है, वह पूरी होती है ?

उ०—नहीं; किसी २ विषय में अपने वा किसी और के सम्बन्ध में कोई २ मंगल कामना पूरी नहीं भी होती, और नहीं हो सकती। परन्तु कोई मंगल कामना अपना थोड़ा वा बहुत वा पूर्णतः फल उत्पन्न करने के बिना नहीं रह सकती, क्योंकि शक्ति के परिचालन से किसी गति वा फल की उत्पत्ति अवश्यम्भावी है। जैसे औषधि के बल से प्रत्येक रोगी की प्रत्येक रोग से निवृत्ति नहीं होती, परन्तु नाना रोगियों के नाना रोग अवश्य दूर होते हैं, वैसे ही मंगल-कामना की शक्ति के द्वारा नाना सम्बन्धों में जहां नाना प्रकार के शुभों की उत्पत्ति होती है, वहां औरों के सम्बन्ध में जो जन जहां तक सच्ची मंगल कामना करता है, वहां तक उसके अपने आत्मा का तो अवश्य शुभ होता है।

प्र०—क्या किसी की ओर से अपने किसी बड़े से आशीर्वाद

चाहने का भी यही अभिप्राय है, कि वह उससे अपने लिए मंगल कामना के लिए प्रार्थना करता है ?

उ०—हां, किसी बड़े से आशीर्वाद वा उससे मंगल कामना चाहना एक ही बात है। इसीलिए किसी बड़े का अपनी ओर से किसी छोटे को हृदय गत आशीर्वाद देना मानों उसके प्रति मंगल कामना का प्रकाश करना है।

प्र०—योग्यता रखने पर भी किसी के सम्बन्ध में किसी की मंगल कामना कम और किसी के सम्बन्ध में अधिक गहरी क्यों होती है ?

उ०—किसी की ओर से किसी के लिए मंगल कामना का कम वा अधिक गहरा होना उसके साथ उसके हृदय के सम्बन्ध पर निर्भर करता है। अर्थात् जो अस्तित्व किसी को किसी और अस्तित्व की अपेक्षा जितना अधिक प्रिय होगा, उसके लिए वह उतने ही अधिक प्रबल भाव से मंगल कामना कर सकेगा, और जितना यह भाव प्रबल होगा, उतना ही उसका प्रभाव भी अधिक होगा। यदि दो जनों में से किसी एक की अनुचित क्रियाओं से तुम्हारे हृदय में उसके प्रति घृणा उत्पन्न हो चुकी हो, और दूसरे के प्रति केवल यही नहीं, कि तुम्हारे हृदय में घृणा न हो, किन्तु उसकी एक वा दूसरी भली क्रिया से कुछ अनुराग उत्पन्न हो चुका हो, और तुम्हारे हृदय में दोनों के प्रति ही मंगल कामना करने के लिए कोई शक्ति प्रेरणा करती हो, तो पहले की अपेक्षा दूसरे के सम्बन्ध में तुम अधिक बलवती मंगल कामना कर सकोगे, और उस तक उस के अधिक बलिष्ट प्रभाव पहुंचा सकोगे।

प्र०—यदि किसी के हृदय में किसी के प्रति घृणा वर्तमान हो, तो क्या वह उसके लिए मंगल कामना कर सकता है ?

उ०—हां, यदि इस घृणा की तुलना में उसमें कोई और ऐसा भाव वर्तमान हो, कि जो उसके किसी दुख वा अभाव के दूर होने वा किसी उचित लाभ की प्राप्ति के लिए उसे प्रेरणा कर सकता हो, तो

वह उस प्रेरणा की कम वा अधिक गहराई के अनुसार उसके लिए अवश्य मंगल कामना कर सकता है।

प्र०—क्या इस नियम के अनुसार किसी के लिए अपने किसी शत्रु के प्रति भी मंगल कामना करना सम्भव है ?

उ०—निश्चय सम्भव है। और देवात्मा ने कितने ही ऐसे जनों के लिए मंगल कामनाएं की हैं, जिन्होंने अपनी अनुचित क्रियाओं से उन्हें नाना प्रकार के भयानक क्लेश पहुंचाए हैं, और कई और प्रकार से उनकी हानियां की हैं। इन में से कई जन ऐसे भी हैं, जिन्होंने यद्यपि उन से नाना प्रकार के हित पाये थे, तथापि उन्होंने अपने एक वा दूसरे अनुचित भाव से परिचालित होकर उनके सम्बन्ध मे कृतज्ञता मूलक क्रियाओं के स्थान में कृतघ्नता मूलक क्रियाएं की हैं, और उनकी इन शोचनीय क्रियाओं के प्रति उनके हृदय में गहरी घृणा भी रही है, तथापि वह उन्हें अपनी मंगल कामनाओं में स्मरण करते रहे हैं।

प्र०—क्या किसी मनुष्य के सम्बन्ध में कभी अमंगल कामना करना भी उचित हो सकता है ?

उ०—नहीं। परन्तु किसी अन्यायी दुष्ट वा अत्याचारी और हानिकारक मनुष्य से अपनी वा किसी और की उचित रक्षा के निमित्त उसके सम्बन्ध में ऐसी कामना की जा सकती है, कि उसकी अमुक दुष्टता दूर हो, अथवा कोई ऐसी घटना उत्पन्न हो, कि जिससे उसकी दुष्टता में रोक पैदा हो, अथवा किसी राज्य विधि के अनुसार उसे कोई उचित दण्ड प्राप्त हो, वा कोई और ऐसी घटना हो, कि जिस से उसकी दुष्क्रियाओं से उसकी वा औरों की उचित रक्षा वा औरों में ऐसी बुरी क्रियाओं के परिणाम के विषय में कोई भय उत्पन्न हो।

प्र०—क्या यह उनके लिए अमंगल कामना करना नहीं है ?

उ०—नहीं, जिस प्रकार न्याय-मूलक राज्य विधि के अनुसार आवश्यक होने पर किसी अपराधी को पकड़ना वा पकड़वाना वा उसे

दण्ड देना वा दिलवाना उसके सम्बन्ध में अमंगल करना नहीं, किन्तु अपनी वा जन समाज की उचित रक्षा वा भलाई के लिए ऐसा करना उचित वा विधेय है, उसी प्रकार किसी अत्याचारी के हाथ से अपनी वा जन समाज की रक्षा के निमित्त पूर्वोक्त प्रकार की कामना अमंगल कामना नहीं होती, और नहीं हो सकती।

प्र०—फिर अमंगल कामना क्या होती है?

उ०—अमंगल कामना वह है, कि जिस में कोई जन अपने किसी अनुचित लाभ वा सुख वा ईर्षा वा प्रतिशोध वा कुसंस्कार के वशीभूत होकर किसी के अनिष्ट के लिए कोई कामना करता है। इस प्रकार की कामना किसी के सम्बन्ध में कभी उचित नहीं, और ऐसी कामना का करना आत्मा के लिए बहुत हानिकारक होता है। इसके विपरीत सच्ची मंगल कामना सदा शुभ फल उत्पन्न करती है।

४—मृत्यु और परलोक तत्व*

प्र०—मनुष्य के आत्मा का उसके शरीर के साथ क्या सम्बन्ध है?

उ०—मनुष्य का आत्मा ही उसके शरीर का निर्माणकर्ता, पालनकर्ता, और अधिपति है। उसी के शरीर में वर्तमान रहने से शरीर जीवित रहता है, और उसी के वियोग से शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है। यही आत्मा स्थूल शरीर की मृत्यु के पश्चात् अपने भीतर सूक्ष्म शरीर निर्माण विषयक आवश्यक शक्ति रखने और अपनी देह में से आवश्यक मात्रा में सूक्ष्म परमाणुओं के प्राप्त होने पर अपने पहले शरीर के अनुरूप एक नया शरीर निर्माण करता है, और फिर पहले की न्याईं पूर्ण मनुष्य बन जाता है।

* परलोक के विषय में भगवान् देवात्मा की अन्तिम शिक्षा का उनकी रचित "मनुष्यात्मा के सम्बन्ध में चार महा तत्व" नामी पुस्तक के दूसरे अध्याय के चारो परिच्छेदो मे से पाठ करें।

प्र०—क्या शरीर के नष्ट अथवा मृत हो जाने पर आत्मा नष्ट नहीं होता ?

उ०—सर्वदा नहीं। परन्तु जब वह अपने स्थूल शरीर के त्याग के अनन्तर सूक्ष्म शरीर के निर्माण करने की आप शक्ति नहीं रखता, अथवा उसके निर्माण करने के लिए आवश्यक मात्रा में सूक्ष्म परमाणु नहीं पाता, अथवा अपमृत्यु को प्राप्त होता है, तब निश्चय नष्ट हो जाता है, अन्यथा नहीं होता, और सूक्ष्म शरीर को निर्माण करके फिर थोड़ी देर में प्रकाशित हो जाता है।

प्र०—किस प्रकार की प्रतिकूल घटनाओं के उपस्थित होने पर मनुष्यात्मा अपमृत्यु को प्राप्त हो कर नष्ट हो जाता है ?

उ० :—

(१) शरीर सहित आग में पूर्णतः भस्म हो जाने से।

(२) शरीर सहित किसी मट्टी आदि के ऐसे ढेर के नीचे बहुत देर तक दबे रहने से, कि जहां शरीर के लिए श्वास लेना असम्भव हो चुका हो।

(३) बहुत ऊंचाई से गिर कर शरीर की जीवनी क्रिया के हठात् बन्द हो जाने से, अथवा बिजली के गिरने और शरीर के हठात् छिन्न भिन्न हो जाने से।

(४) बारूद वा तोप के गोले आदि के द्वारा शरीर के हठात् टुकड़े २ होकर दूर तक तित्तर बित्तर होजाने से। इत्यादि।

प्र०—किसी और प्रकार से भी ?

उ०—हां भ्रूणपात हो जाने पर अथवा शारीरिक पूर्ण गठन के मिलने पर जन्म लेते ही वा उसके थोड़े दिनों के अनन्तर देहत्याग करने पर भी आत्मा नष्ट हो जाता है।

प्र०—तब क्या अपमृत्यु से मनुष्य का रक्षा पाना नितान्त आवश्यक है ?

उ०—हां, नितान्त आवश्यक है, और इसीलिए जहां तक सम्भव हो, प्रत्येक मनुष्य की अपमृत्यु से रक्षा होनी चाहिए।

प्र०—क्या स्वभाविक मृत्यु काल के उपस्थित होने पर मुमूर्षू की किसी प्रकार से सहाय करने की आवश्यकता है?

उ०—हां, स्वभाविक मृत्यु के उपस्थित होने पर भी सूक्ष्म शरीर के भली भान्त निर्माण होने और उसे कई प्रकार के विघ्नों से सुरक्षित रखने के लिए, अन्तिम काल विषयक कई कल्याणकारी नियमों के पालन करने की आवश्यकता है।

प्र०—कौन २ से नियमों की?

उ०—

(१) मुमूर्षू (मरने वाले) का वास स्थान, उस की चारपाई, उसके बिछौने और उसके पहनने और ओढने के सब वस्त्र परिष्कार हों।

(२) मुमूर्षू के पास किसी प्रकार की दुर्गन्ध न आती हो।

(३) मुमूर्षू के वास स्थान में ताजी हवा के आने जाने के लिए उचित रूप से द्वार आदि खुले हुए हों।

(४) मुमूर्षू के शरीर पर से बहुत तेज़ वायु प्रवाहित न होती हो।

(५) मुमूर्षू के शरीर तक मेंह आदि की कोई बून्दें न पहुंचती हों।

(६) मुमूर्षू के समीप अग्नि न रक्खी जावे, (रात के समय कुछ दूर पर लैम्प वा दीपक जल सकता है।)

(७) मुमूर्षू के वास गृह में बहुत लोग इकट्ठे न हों।

(८) मुमूर्षू का शिर उसके पास की कन्ध से यथा सम्भव एक वा दो हाथ वा उस से भी अधिक हटा हुआ हो।

(९) मुमूर्षू का शिर पूर्ण रूप से खुला रहे। और यदि किसी विशेष कारण से उसके शिर पर कपड़ा रखना बहुत ही आवश्यक हो, तो उस पर सिवाय पतले और हलके कपड़े के कोई मोटा और भारी कपड़ा न रक्खा जाय।

(१०) मुमूर्षु के शिर पर (और हो सके तो उसके शरीर पर भी) कुछ सुगन्धि लगाई जाय।

(११) मुमूर्षु के शिर की ओर का स्थान बिल्कुल खाली रहे, अर्थात् उधर कोई मनुष्य न बैठे, और न खड़ा हो, और न उधर कोई वस्तु रक्खी जाय, और जिस किसी जन को उसके पास रहना आवश्यक हो, वह उसके पांयते अर्थात् पांवों की ओर अथवा दाएं बाएं बैठे, वा खड़ा हो; क्योंकि उसके सूक्ष्म परमाणु शिर से निकल २ कर उसके सिर की ही ओर एकत्र होते हैं, और उनमें किसी मनुष्य वा वस्तु की ओर से कोई व्याघात न पड़ना चाहिए। इस नियम पर बहुत अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता है।

(१२) मुमूर्षु के शिर के पास से अर्थात् उसके सिरहाने की तरफ से किसी का आना जाना न हो।

(१३) मुमूर्षु के कान तक किसी प्रकार का कोई उच्च शब्द न पहुंचे।

(१४) मुमूर्षु के समीप कोई उच्च स्वर से न बोले, और जहां तक हो, उसके समीप अधिक बात चीत न की जाय।

(१५) मुमूर्षु के समीप कोई जन उच्च शब्द निकाल कर रोदन न करे। यदि रोना आता हो, तो उसके पास से बहुत दूर जाकर रोवे।

(१६) मुमूर्षु के शरीर को जहां तक हो, हिलाया जुलाया न जाय।

(१७) मुमूर्षु के मर जाने पर कितनी देर तक उसकी शव को किसी प्रकार छेड़ा न जाय।

(१८) मुमूर्षु के हाथ पांव आदि यदि अधिक जोर से खिचते हुए दिखाई दे, तो उन पर धीरे २ हाथ फेरा जाय।

(१९) मृत्यु के समय और उसके अनन्तर भी देहत्यागी के कल्याण के लिए चुपचाप मंगल कामना की जाय, अथवा

मंगल कामना सम्बन्धी कोई गीत (विना वाजे के) गाया जाय।

(२०) मृत्यु हो चुकने के तीन चार घण्टे के अनन्तर तक उच्च स्वर के साथ रोदन न किया जाय।

प्र०—सूक्ष्म शरीर किस प्रकार निर्माण होता है?

उ०—स्थूल शरीर में जब मृत्यु का कार्य आरम्भ हो जाता है, तब उस समय से लेकर जब तक श्वास क्रिया का शेष नहीं हो जाता, तब तक उसके भीतर से ऐसे सूक्ष्म परमाणु, कि जो स्थूल दृष्टि से दिखाई नहीं देते, धुएं की न्याई शिर से लगातार निकलते रहते हैं, और उससे कुछ दूर पर इकट्ठे होते रहते हैं। जब स्थूल शरीर के यह सब सूक्ष्म परमाणु बाहर निकलकर इकट्ठे हो जाते हैं, तब उन्हें लेकर जीवनी शक्ति अपने लिए सूक्ष्म शरीर के निर्माण का कार्य आरम्भ करती है, और जैसे जरायु में मां के शरीर के परमाणुओं से धीरे २ बच्चा बनता है, वैसे ही इन परमाणुओं से उसके पहले शरीर के अनुरूप एक नया सूक्ष्म शरीर बन जाता है, और फिर यह क्रम २ से बोध लाभ करके पहले की सदृश फिर पूर्ण और चेतन मनुष्य बन जाता है।

प्र०—स्थूल शरीर की मृत्यु के अनन्तर कितनी देर मे यह सूक्ष्म शरीर बन जाता है?

उ०—प्राय आध घण्टे से लेकर पांच छै घण्टे तक बनकर चेतन अवस्था में पहुंच जाता है।

प्र०—स्थूल देह के त्याग के अनन्तर जो आत्मा सूक्ष्म शरीर धारण करने के योग्य होते हैं, वह सब कहां जाते और कहां रहते हैं?

उ०—अपनी २ नीच और उच्च अवस्था के अनुसार कोई इसी पृथ्वी के साथ बन्धे रहकर अधम लोक में रहते हैं, और कोई परलोक सम्बन्धी किसी लोक में जाकर वास करते हैं।

प्र०—परलोक कहां है?

उ०—जिस प्रकार हमारे स्थूल सौर जगत् के साथ हमारी इस पृथ्वी का सम्बन्ध है, और यह पृथ्वी उसका एक अंग है, उसी प्रकार इस सौर जगत् के सूक्ष्म परमाणुओं से जो एक और सूक्ष्म सौर जगत् बना है, उसके साथ हमारी जैसी जिस सूक्ष्म पृथ्वी का सम्बन्ध है, उसे **परलोक** कहते हैं।

प्र०—तब फिर हमारी स्थूल पृथ्वी की न्याईं एक और सूक्ष्म पृथ्वी का नाम ही परलोक है ?

उ०—हां।

प्र०—क्या सूक्ष्म पृथ्वी भी हमारी पृथ्वी की न्याईं गोल और विविध प्रकार के वृक्षों और पशुओं आदि का वास स्थान है ?

उ०—हां।

प्र०—वहां पर मनुष्य आत्मा तो यहां से जाकर बसते हैं, पर क्या वृक्ष और पशु आदि भी यहां से जाते हैं ?

उ०—हां।

प्र०—क्या परलोक सम्बन्धी पृथ्वी में कई लोक हैं ?

उ०—हां। परलोक सम्बन्धी पृथ्वी अपनी अपेक्षाकृत अल्प वा अधिक सूक्ष्म अवस्था के विचार से बहुत से लोकों में विभक्त है। और यह सब लोक अपनी २ अपेक्षाकृत निम्न अथवा उच्च अवस्था के अनुसार विविध प्रकार के जीवन धारियों को धारण और पोषण करते हैं। अर्थात् उसका एक भाग जो यहां से जाते हुए पहले आता है, और जो अधिकांश रूप से वृक्षों से ही भरा हुआ है, वह वहां का **उद्भिद् लोक** कहलाता है। फिर उससे आगे का भाग जिस में अधिकांश पशु ही रहते हैं, **पशु लोक** कहलाता है। फिर उससे आगे का भाग जिस मे अधिकांश रूप से मनुष्यों के बच्चे ही रहते हैं, **शिशुलोक** कहलाता है। फिर उस से आगे के विभाग में प्रथम श्रेणी के मनुष्य आत्मा रहते हैं, और वह **पहला लोक** कहलाता है। फिर उससे आगे का लोक जो

दूसरी श्रेणी के मनुष्य आत्माओं के वास के योग्य हैं, **दूसरा लोक** कहलाता है। इसी प्रकार जो तीसरी श्रेणी के मनुष्य आत्माओं के वास के योग्य है, वह **तीसरा लोक** और जो चौथी श्रेणी के मनुष्य आत्माओं के वास के योग्य है, वह **चौथा लोक**, और जो पांचवीं श्रेणी के योग्य है, वह **पांचवां**, और जो छठी के योग्य है, वह **छठा लोक** कहलाता है। और इसी प्रकार यह क्रम आगे भी है।

प्र०—तब क्या अपने २ जीवन की नीच वा उच्च अवस्था के विचार से जो २ वृक्ष अथवा पशु अथवा मनुष्य परलोक सम्बन्धी जिस २ लोक के योग्य होता है, वह इस पृथ्वी पर मरने के अनन्तर उसी लोक को प्राप्त होता है ?

उ०—हां। अनुकूल अवस्थाओं में उसी लोक में पहुंच जाता है।

प्र०—क्या पशुओं और पौदों मे भी कोई अपेक्षाकृत उच्च और कोई नीच होते हैं ?

उ०—हां। जो पशु वा पौदा अपने अस्तित्व के विचार से विश्व के और अस्तित्वों के सम्बन्ध में जितना हितकर वा हानिकारक होता है, वह उतना ही उच्च वा नीच होता है, और इसी लिए उच्च श्रेणी के पशु और पौदे अपनी २ अवस्था के अनुसार उच्च लोकों को और नीच श्रेणी के पशु और पौदे नीच लोकों को प्राप्त होते हैं, अथवा किसी लोक मे भी पहुंचने की योग्यता न रखने पर मरने के साथ ही पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, यथा शेर, भेड़िया, चीता आदि नाना प्रकार के हिंसक और सांप, बिच्छू, मच्छर, खटमल, भिड आदि नाना प्रकार के हानिकारक जीव और आक धतूरा आदि कई प्रकार के पौदे मरने के साथ ही साधारणत. नष्ट हो जाते हैं।

प्र०—और जो आत्मा यहां से मरने के अनन्तर सूक्ष्म शरीर ग्रहण करके परलोक के किसी लोक में पहुंचने और वास करने के योग्य नहीं होते, उनकी क्या दशा होती है ?

उ०—वह सूक्ष्म आकार धारण करने पर इसी पृथ्वी में रह जाते हैं, और इसी पृथ्वी में अथवा इसके आस पास घूमते रहते हैं। उनके इस निवास स्थान को **अधम लोक** कहते हैं। और जो मनुष्यात्मा इस अधम लोक में वास करते हैं, वह **अधम आत्मा** कहलाते हैं।

प्र०—अधम आत्मा उच्च न बनकर और अधम लोक में पड़े रहकर कब तक जीवन धारण करते हैं?

उ०—जब तक उनकी जीवनी शक्ति घटते २ शेष नहीं हो जाती, और उन्हें अपने सूक्ष्म शरीर के पालन के लिए आहार आदि मिलता रहता है।

प्र०—भला अधम आत्माओं को आहार किस प्रकार मिलता है?

उ०—वह हम लोगों के आहार और इस पृथ्वी के फलों आदि से जो सूक्ष्म परमाणु निकलते हैं, उन्हें खाते हैं। इसके भिन्न जो पशु मर कर अधम लोक में ही रहते हैं, अथवा मनुष्यों के जो छोटे २ बच्चे मरते हैं, और जिनका कोई रक्षक नहीं होता, उन्हें भी चट कर जाते हैं।

प्र०—क्या जब कोई छोटा बच्चा वा किसी बड़ी वयस का कोई जन इस पृथ्वी मे मरने लगता है, तब उसके कोई परलोक वासी सम्बन्धी आत्मा उसकी कुछ सहाय करते हैं?

उ०—हां। साधारणत उसके परलोक वासी संबंधी आत्मा अथवा परोपकार भाव से परिचालित होकर वहां के अन्य आत्मा उसके पास पहुंच कर उसकी सहायता करते हैं, और उसके सूक्ष्म शरीर के ग्रहण कर लेने पर यदि वह परलोक में जाने के योग्य हो, तो उसे वहां लेजाकर जो कुछ उसकी और सहाय कर सकते हैं, वह भी करते हैं। छोटे बच्चों के लिए विशेष कर ऐसी सहाय की बहुत आवश्यकता होती है; क्योंकि वह अपने आप अपनी रक्षा कुछ भी नहीं कर सकते, और इसीलिए जिन बच्चों का और कोई रक्षक नहीं होता, उनके पास

यथासाध्य पहुंचने और उनकी सब आवश्यक सहाय करने के लिए ऐसे परोपकारी आत्मा चेष्टा करते हैं।

प्र०—क्या भूत, चुडैल आदि अधम आत्माओं के ही नाम हैं ?

उ०—हां, और यह सब महानीच और अधम जीवन व्यतीत करते हैं।

प्र०—क्या इस अधम अवस्था से उनके निकलने का कोई उपाय नहीं ?

उ०—कोई २ आत्मा जो अधम लोक से परलोक में पहुंचने की योग्यता लाभ कर सकते हैं, परन्तु वह किसी प्रबल मोह वा महा पाप के कारण अधम लोक में ही रह जाते हैं, वह उचित सहाय पाने और उस विकार से रहित होने पर ऊपर के किसी लोक में चले जाते हैं। परन्तु उनके भिन्न और अधम आत्मा जो परलोक में जाने की कुछ भी योग्यता नहीं रखते, वह इतने कदर्य्य और गन्दे होते हैं, और उन के भीतर से इतनी दुर्गन्ध निकलती है, कि कोई उच्च आत्मा उनके पास खड़ा तक नहीं हो सकता। वह सभी इतने पतित होते हैं, कि उनके भीतर कुछ भी उच्च बनने की अभिलाषा नहीं रहती और इसीलिए वह अपनी नीच गतियों के महा भयानक फलों को न्यूनाधिक काल तक भोग कर और उसी महा शोचनीय अवस्था में धीरे २ घुलकर जीवनी शक्ति के शेष हो जाने पर एक दिन पूर्णत नष्ट हो जाते हैं।

प्र०—यह अधम आत्मा कितने २ काल तक इस अधम लोक में पड़े रहते हैं ?

उ०—कोई थोड़े दिनों और थोडे वर्षो तक और कोई सौ २ डेढ़ २ सौ वर्षो तक जीवित रह कर और बहुत क्लेश और दु.ख भुगत कर विनष्ट होते हैं।

प्र०—क्या उनमे ऐसे लोग भी होते है, कि जो इस पृथ्वी में इस वा उस धर्म मत के मानने वाले कहलाते हैं ?

उ०—हां, प्रायः ऐसे ही लोग बहुत से होते हैं, अर्थात् लाखों जन जो पहले ईसाई कहलाते थे, लाखों जन जो मुसलमान कहलाते थे, लाखों जन जो हिन्दू अथवा सिक्ख, जैनी, कबीरपंथी, दादूपंथी, शैव, शाक्त, योगी, वैरागी, साधु, सन्यासी और विद्वान् आदि कहलाते थे, अपने अधम जीवन के कारण उस में वास करते हैं।

प्र०—क्या विद्वान् लोग भी इस भयानक दशा को प्राप्त होते है?

उ०—हां, केवल विद्वान् होने से जैसे एक ओर नीच गतियों से रक्षा नहीं हो सकती, वैसे ही दूसरी ओर उनके फलों से भी रक्षा नहीं हो सकती।

प्र०—क्या यह बात सच है, कि मनुष्य मर कर फिर इसी पृथ्वी में किसी मनुष्य अथवा पशु आदि के गर्भ में आकर जन्म लेता है?

उ०—नहीं। यह बात पूर्णत मिथ्या है। जीवन तत्वों से अन्ध रहकर ही बहुत से लोग ऐसी मिथ्या कल्पना पर विश्वास करते हैं। मनुष्यात्मा अपने स्थूल शरीर के छोड़ने पर अपनी नीच अथवा उच्च अवस्था के अनुसार सूक्ष्म शरीर धारण करके इसी पृथ्वी के निकट अधम लोक में अथवा परलोक सम्बन्धी किसी लोक में वास करता है, अथवा सूक्ष्म शरीर के ग्रहण करने की योग्यता न रखने पर सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है।

प्र०—क्या मनुष्यात्मा अपनी नीच और उच्च गतियों के द्वारा परिचालित होकर प्रति मुहूर्त नीच अथवा उच्च जीवन ग्रहण करता रहता है?

उ०—हां, प्रत्येक मनुष्य आत्मा जिस २ नीच अथवा उच्च भाव के द्वारा परिचालित होकर विश्वगत अपने किसी सम्बन्ध मे कोई अनुचित चिन्ता वा अशुभ कर्म अथवा उच्चगति दायक चिन्ता वा शुभ कर्म करता है; उन्हीं के अनुसार उस के आत्मा का रूप बिगडता वा बनता रहता है, और स्थूल शरीर के छोड़ने के अनन्तर वह अपनी इसी अवस्था के अनुसार अधम अथवा परलोक सम्बन्धी किसी लोक को प्राप्त होता है।

प्र०—क्या अधम लोक वासी आत्मा अपनी नीचता के कारण इस पृथ्वी के अधिवासियों को किसी प्रकार की हानि भी पहुंचा सकते हैं ?

उ०—हां। इन में से कितने ही दुष्ट जन कितने ही रोगी और दुर्बल बच्चों और कितने ही बीमार लोगों की पीडा को वढा देते हैं। इसके भिन्न वह किसी २ स्थान में कितने ही मनुष्यों के साथ और भी कई प्रकार के अत्याचार करते हैं। फिर जो लोग बुरी चिन्ता अथवा बुरे भाव पोषण करते हैं, उनके बुरे भावों के बढा देने में सहाय करते हैं, और उन्हें कई प्रकार के पापों और अपराधों के करने के लिए प्रस्तुत कर देते हैं। यह जैसे आप अधम से अधम और नीच से नीच बनते रहते हैं, वैसे ही औरों को भी अपनी न्याईं नीच बनाने की चेष्टा करते हैं। मैले कुचैले घर और वस्त्र और शरीर, और मैले और बुरे हृदय रखने वालों को इन अधम आत्माओं के द्वारा विशेषकर बहुत हानि पहुंचती है। इसीलिए जो जन बाहर और भीतर से जितना शुद्ध रहता है, और जितनी पवित्र चिन्ता और जितने उच्च भाव पोषण करता है, उतना ही वह उनके अपवित्र और हानिकारक प्रभाव से बचा रहता है, अर्थात् जो आत्मा जितना उच्च होता है, उतना ही वह ऐसे अधम और दुष्ट आत्माओं को केवल यही नहीं, कि अपनी ओर आकृष्ट नहीं करता, किन्तु उनको परे रखने और उन्हें परास्त करने की शक्ति रखता है।

प्र०—अच्छा, जो लोग इन अधम आत्माओं की न्याईं नीच नहीं होते, किन्तु परलोक के किसी लोक में पहुंचकर वास करने के योग्य होते हैं, उनकी अवस्था क्या होती है ?

उ०—परलोक मे भी पहले और दूसरे लोक तक जो आत्मा पहुंचते हैं, उनकी अवस्था कुछ बहुत अच्छी नहीं होती, क्योंकि वह अधम आत्माओं की अपेक्षा न्यूनाधिक रूप में कुछ श्रेष्ठ होकर भी नाना विकासकारी गतियों से विहीन होते हैं। इसीलिए यद्यपि वह वहां पर

अधम आत्माओं के समान महा शोचनीय अवस्था के फल तो भोग नहीं करते, परन्तु फिर भी जब तक उनमें उच्च बनने की आकांक्षा न जागे, और किसी उच्च गति का लगातार विकास न हो, तब तक उनका जीवन क्षय ही होता रहता है, और विनाशकारी गतियों से उन्हें उद्धार लाभ नहीं होता।

प्र०—जिन आत्माओं में उच्च बनने की कुछ आकांक्षा जाग्रत हो जाती है, और उनमें उच्च गति दायक कोई सात्विक भाव भी उत्पन्न हो जाता है, उनकी अवस्था क्या होती है ?

उ०—वह एक वा दूसरे सम्बन्ध में जिस सीमा तक नीच गतियों से निकलने और जिस २ उच्च गति दायक किसी भाव के द्वारा अपने आत्मा का विकास साधन करने के योग्य हो जाते हैं, उसी सीमा तक दूसरे लोक से तीसरे, अथवा उससे ऊपर के लोक में जाने और वास करने के योग्य बन जाते हैं। और इसीलिए जब तक कोई आत्मा कम से कम तीसरे लोक में जाने के योग्य न बने, तब तक उस के और आगे बढ़ने और अपने जीवन में विकास लाभ करने की आशा नहीं हो सकती।

प्र०—क्या तीसरे लोक में पहुंचने के योग्य हो जाने से सब आत्माओं के लिए विकास का पथ खुल जाता है ?

उ०—नहीं। कितने ही आत्मा जो यहां मोटे २ कई पापों से बचे रहते हैं, और दान आदि सम्बन्धी कुछ साधन करते रहते हैं, वह भी तीसरे लोक में और कभी २ उस से कुछ ऊपर के लोकों में पहुंचने के योग्य हो जाते हैं। परन्तु जीवन तत्वों के विषय में प्रकृत ज्योति के लाभ न करने और आत्मा जिन अटल गतियों के अधीन होकर विनाश अथवा विकास लाभ करता है, उनके न पहचानने और सत्य मोक्ष और उच्च जीवन विषयक आकांक्षा के उत्पन्न अथवा उन्नत न होने से वह और आगे नहीं बढते, और इसी लिए उनके लिए भी भावी विकास का पथ अधिक नहीं खुलता।

प्र०—इस योग्यता के लाभ करने के तो अपेक्षाकृत बहुत थोड़े ही आत्मा अधिकारी होते होंगे ?

उ०—इस में क्या सन्देह है । इसीलिए कितने सौभाग्यवान् वह आत्मा हैं, जिन्हें जीवन तत्व शिक्षक, नीच गति विनाशक और उच्च गति विकासक और धर्म जीवन के पूर्ण अवतार श्री देवगुरु भगवान् के कुछ भी पहचानने और उनके साथ कुछ भी प्रकृत रूप से आकर्षण सूत्र में बन्धने का अवसर मिला है। हां, इस से बढकर उनके लिए और क्या लाभ हो सकता है ? और इससे बढकर कोई आत्मा और क्या चाह सकता है ? कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं । अब जो जन अपने इस अधिकार की प्रकृत महिमा को देखने के योग्य हो, वह उसकी तुलना में पार्थिव सकल सम्पद् और सकल प्रभुता को असार और तुच्छ अनुभव, और उसकी प्राप्ति के लिए यथावश्यक अपनी ऐसी सब सम्पद् और सब प्रभुता को निछावर कर सकता है ।